दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९६ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २५ अंक नं० ८

अमर भये न मरेंगे

अब हम अमर भये न मरेंगे ॥टेक॥

तन कारन मिथ्यात दियो तज, क्यों करि देह धरैंगे... अब० ॥१॥

उपजै मरै कालतैं प्रानी, तातैं काल हरैंगे।

राग दोष जग बंध करत हैं, इनको नाश करैंगे... अब० ॥२॥

देह विनाशी मैं अविनाशी भेदज्ञान पकरैंगे।

नासी जासी हम थिरवासी, चोखे हो निखरैंगे... अब० ॥३॥

मरे अनंत बार बिन समझैं, अब सब दुख विसरैंगे।

'द्यानत' निपट निकट दो अक्षर, बिन सुमरैं सुमरैंगे... अब० ॥४॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

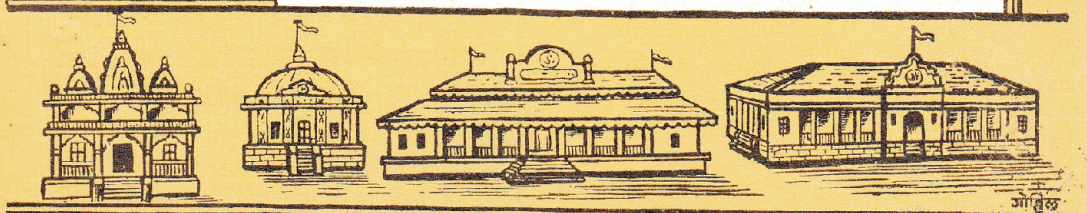

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

दिसम्बर १९६९ वार्षिक मूल्य ३) रुपये (२९६) एक अंक २५ पैसा [कार्तिक २४९६

हिन्दी साहित्य प्रकाशन संबंधी आवश्यक विज्ञप्ति

मुमुक्षु भाई-बहिनों को सूचित करते हुए हर्ष होता है कि—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट ने निम्नोक्त पुस्तकें प्रकाशित करने का विचार किया है। इसलिये जिन नगरों में मुमुक्षु मंडल हैं, वे पत्र द्वारा सूचित करें कि उन्हें किस पुस्तक की कितनी प्रतियों की आवश्यकता है। मुमुक्षु मंडलों की ओर से पर्याप्त संख्या में आर्डर आने पर पुस्तकें छपाने की व्यवस्था की जायेगी, इसलिये शीघ्र हमें सूचित करें।

मुमुक्षु मंडलों के अध्यक्ष महानुभावों से निवेदन है कि वे अपने मंडल के लिये आवश्यक पुस्तकों की बिल्कुल सही संख्या सूचित करें। पुस्तकों के लिये कोई अग्रिम राशि भेजने की आवश्यकता नहीं है; परंतु इस बात की गारंटी दें कि आपका मंडल इतनी प्रतियाँ अवश्य खरीद लेगा।

जिन नगरों में मुमुक्षु मंडल नहीं हैं, वहाँ के मुमुक्षु व्यक्तिगत रूप से हमें अपनी आवश्यकतानुसार पुस्तकों की संख्या लिखें।

संस्था के नियमानुसार पुस्तकों का मूल्य लागत से कम रखा जायेगा। किस पुस्तक का कितना मूल्य रखा जाये, वह बाद में तय किया जायेगा। अभी निम्नोक्त तेरह पुस्तकें प्रकाशित करने का विचार है:—

(१) श्री समयसार शास्त्र (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत)

(२) श्री श्रावकधर्म प्रकाश (श्री पद्मनंदि-पंचविंशतिका के देशव्रतोद्योतन अधिकार पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(३) श्री अनुभव प्रकाश (श्री दीपचंदजी कासलीवाल कृत)

(४) श्री ज्ञानचक्षु (श्री समयसार गाथा ३२० की जयसेनाचार्यकृत 'तात्पर्यवृत्ति' टीका पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(५) सम्यग्दर्शन भाग-१ (स्वामीजी के प्रवचन)

(६) भेदविज्ञानसार (समयसार के अन्तिम भाग पर प्रवचन)

(७) ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव (प्रवचनसार के तथा समयसार गाथा ३०८ से ३११ तक के प्रवचन)

(८) आत्मवैभव (समयसार ४७ शक्तियों पर प्रवचन)

(९) समयसार प्रवचन, भाग १-२ (पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(१०) समयसार प्रवचन, भाग ३ (पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(११) समयसार प्रवचन, भाग ४ (पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(१२) समयसार प्रवचन, भाग ५ (पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(१३) दसलक्षण धर्म (पद्मनन्दि पंचविंशतिका तथा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा के प्रवचन)

प्रेषक—

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

दिसम्बर : १९६९ ☆ कार्तिक, वीर नि०सं० २४९५, वर्ष २५ वाँ ☆ अंक : ८

अपना सुख और आनंद अपने में है

भाई, तेरा सुख और आनंद तुझमें होगा या बाहर? जिसप्रकार मीठे पानी के समुद्र में रहनेवाली मछली प्यास से तड़पे और दूसरे से पानी की याचना करे—तो वह आश्चर्य है! अरे, तू स्वयं ही मीठे पानी में रहती है... वह पानी क्यों नहीं पी लेती? बाहर क्यों ढूँढ़ती है? उसीप्रकार अज्ञानी सुख और आनंद के साधनों को बाह्य में ढूँढ़ताा है। अपने में ही सुख का सागर लहरा रहा है, उसे भूलकर बाह्य में सुख के लिये मिथ्या-प्रयत्न करता है, परंतु मछली के दृष्टांत से संत उसे बोध देते हैं कि—भाई, सुख-शांति और आनंद का सागर तो तुझमें ही भरा है, उसमें डुबकी लगाकर एकाग्र हो तो तुझे आनंद का अनुभव होगा। बाह्य में तेरा आनंद नहीं है। तेरे अनंत धर्म तुझमें ही भरे हैं, बाह्य में नहीं हैं, इसलिये बाहर न ढूँढ़... अपने में ही देख!

अनुभव का मार्ग

[आत्मा के अनुभव का मार्ग गहरा, गंभीर व अंतर का है]

भगवान का मार्ग, वह अनुभव का मार्ग है, जैन-शासन का समावेश आत्मा की अनुभूति में होता है। राग के अंश द्वारा वीतरागभगवान का मार्ग प्रारंभ नहीं होता; परंतु वीतराग अंश द्वारा ही भगवान का मार्ग प्रारंभ होता है। शुद्ध परिणाम-अनुसार भगवान का मार्ग है। राग अनुसार, विकल्प-अनुसार भगवान का मार्ग नहीं है अर्थात् मोक्षमार्ग नहीं है। चैतन्य की गहराई में उतरने-उसकी गंभीरता में जाने से वीतरागी आनंद का अनुभव प्रगट होता है। वह मोक्षमार्ग है, वह द्रव्य का शुद्ध परिणाम है। विकल्प-रागादि वास्तव में द्रव्य के परिणाम नहीं हैं, वे तो स्वभाव से बाहर हैं, स्थूल हैं, ऊपर-ऊपर के हैं और अंतर अनुभव के परिणाम तो सूक्ष्म-गंभीर व गहरे हैं।

जो विकल्प करने में ही खड़ा है और निर्विकल्पता में नहीं आता, वही विकल्प का कर्ता है; निर्विकल्प में आये बिना विकल्प का कर्तापना (अज्ञान) नहीं छूटता है। और जहाँ अंतर्मुख निर्विकल्प अनुभव में आया, वहाँ विकल्प का कर्तापना नहीं रहता।

विकल्प को स्वरूप जाने, उसको उसका कर्तापना कैसे छूटे ? और अंतर्मुख ज्ञानभाव में आया, उसको विकल्प का कर्तापना कैसे रहे ?

चैतन्य के प्रवाह में विकल्प का कर्तृत्व नहीं रहता। और जो जीव विकल्प के प्रवाह में परिणमित हो रहा है, वह उससे पृथक् होकर निर्विकल्प चैतन्य-प्रवाहरूप नहीं होता, उसको विकल्प के साथ कर्ता-कर्म-बुद्धिरूप मिथ्यात्व है।

अरे, चैतन्य के आनंद की अनुभूति क्या है-वह विकल्प में नहीं आती। ''धर्मात्मा के अनुभव में आनंद का उद्यान खिला है—सिद्ध भगवान जैसा मोक्ष का सुख धर्मी को अनुभव में आंशिक आ जाता है। अविनश्वरपुर ऐसा जो चैतन्यधाम, उसमें खिले हुए आनंद के उद्यान में धर्मी जीव केलि करते हैं।''

विचार दशा में भी ज्ञानी को ज्ञान और विकल्प दोनों भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं, उस

समय दोनों एक होकर कार्य नहीं करते। ''निर्विकल्पता के समय ही ज्ञानी को ज्ञान और विकल्प भिन्न हैं, और सविकल्पदशा में उसका ज्ञान विकल्प से भिन्न नहीं''—ऐसा नहीं होता। अनुभवपूर्वक राग से भिन्न ज्ञान परिणमित हुआ, उसके बाद साधकदशा में वह सदा (निर्विकल्प या सविकल्प किसी भी दशा में) भिन्न ही परिणमता है। ज्ञान कभी भी विकल्प के कर्तापनरूप नहीं परिणमता। ऐसे अकर्ता ज्ञान को पहिचाने तो ही ज्ञानी की सच्ची पहिचान होती है और स्वयं को वैसा ही ज्ञान प्रगट होता है।

स्वसन्मुख विचार, वह ज्ञान है, वह विकल्प नहीं—उस संबंधी यहाँ विशेष स्पष्टीकरण है... कि साधक को विचारदशा के समय 'ज्ञान' और विकल्प दोनों एकसाथ वर्तते हैं, परंतु वहाँ ज्ञानी तो ज्ञानरूप ही अपने को जानते हैं परंतु विकल्परूप अपने को नहीं जानते, अत: उनको विकल्प के समय भी ज्ञान में विकल्प के कर्तृत्व का अंश भी नहीं। विचार दशा के समय में भी, उनका ज्ञान और विकल्प दोनों भिन्न-भिन्न कार्य कर रहे हैं; उस समय भी दोनों एक होकर कार्य नहीं करते। ज्ञानी की यह बात विशेष तौर पर समझना चाहिये। 'निर्विकल्पता के समय ज्ञानी का ज्ञान विकल्प से भिन्न ही है, और विकल्पता के समय भी ज्ञानी का ज्ञान विकल्प से भिन्न ही है।'—यह बात लक्ष में लेने जैसी है। निर्विकल्प अनुभवपूर्वक राग से भिन्न ज्ञान परिणमित हुआ, उसके बाद साधकदशा में भी (सविकल्पदशा में भी) सदा भिन्न ही परिणमता है। वह ज्ञान कभी भी विकल्प के कर्तापनेरूप परिणमित नहीं होता। ऐसे अकर्ता ज्ञान को पहिचाने तो ही ज्ञानी की सच्ची पहिचान होती है और अपने को भी वैसा ही ज्ञान प्रगट होता है।

साधकदशा अनुसार ज्ञान और विकल्प के कार्य की भिन्नता प्रत्येक भूमिका में समझ लेनी चाहिये।

ज्ञान का अनुभवनशील अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव—उसके ज्ञान में विकल्परूप परिणमन नहीं है अर्थात् वह विकल्प का कर्ता नहीं है। मिथ्यादृष्टि को विकल्प से भिन्न ज्ञान का अनुभव नहीं है, अत: विकल्प को ही अनुभवता हुआ वह उसका कर्ता बनता है। जो जिस परिणामरूप से परिणमता है, उसे उस परिणाम का कर्ता कहा जाता है। ज्ञानपरिणामरूप परिणमित ज्ञानी ज्ञान का ही कर्ता है, और विकल्परूप परिणमता अज्ञानी विकल्प का ही कर्ता है—क्योंकि वह विकल्प में ही खड़ा है। आत्मा को जिस रूप जानता है, उसी स्वरूप स्वयं परिणमता है। आत्मा को जिसने अशुद्ध ही (विकल्परूप ही-रागरूप ही) जाना है, वह शुद्ध परिणामों का

कहाँ से करेगा ? वह तो अशुद्ध परिणाम का ही कर्ता होकर, वैसा ही अपने को अनुभव करता है और जिसने अपने आत्मा को शुद्ध आनंदरस झरता ज्ञानमय जाना, वह अशुद्धता का कर्ता कैसे होगा ? वह तो ज्ञान-आनंदरूप परिणमता हुआ, उसका कर्ता होकर वैसा ही अपने को अनुभवेगा। जो जिसका कर्ता होकर परिणमता है, उसका ही उसको अनुभव होता है। राग का कर्ता बनता है, उसको निर्विकल्प-आनंद का अनुभव नहीं होता।

स्वभाव की सन्मुखता में रागादि का कर्तृत्व नहीं रहता।

स्वभाव से विमुख परिणाम में ही रागादि का कर्तृत्व है।

इस तरह सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि, इन दोनों के परिणाम में बहुत ही अंतर है। बिल्कुल भिन्न जाति ही है। एक ज्ञान, एक विकल्प, दोनों की जाति ही बिल्कुल भिन्न है। जिसप्रकार सूर्य का प्रकाश होते अंधकार नहीं रहता, उसी तरह आत्मा में सम्यक्त्वरूप ज्ञान-प्रकाश होते ही, उसमें विकल्प का कर्तृत्व नहीं रहता। अरे ! ज्ञान से विरुद्धभाव का कर्तृत्व ज्ञान में कैसे शोभायमान हो ? ज्ञान विकल्परूप नहीं होता, तो भी अज्ञानी ज्ञान में विकल्प का कर्तृत्व मानता है, वह कर्तृत्व, आत्मा में शोभा नहीं देता। ज्ञान का आदर न करके, विकल्प का आदर करे, उसमें शोभा नहीं है, अशोभा है—मिथ्यात्व है।

शरीर के कर्तृत्व की तो बात ही कहाँ रही ? परंतु ज्ञान में राग का कर्तृत्व माने, वह यथार्थ जैन नहीं है ! जो ज्ञायकरूप आत्मा को अनुभवता है अर्थात् शुद्धतारूप परिणमता है, वही सच्चा जैन है, वही जिन के मार्ग में आया है, अर्थात् मोक्षमार्ग में आया है।

वह मोक्षमार्गी जीव क्या करता है ? तो कहते हैं कि—ज्ञान-आनंदरूप परिणाम करता है;—उस रूप परिणमता है, रागादि को अपने ज्ञानपरिणाम से भिन्न जानता है—'जो जाने सो जाननहारा'—जाननेवाला तो जाननेवाला ही रहता है। ज्ञानी, ज्ञानभावमय ही परिणमते हैं। वे ज्ञान से भिन्न विकल्पों में कभी भी तन्मयरूप नहीं परिणमते, उन्हें नहीं करते। अहो, ज्ञान और विकल्प की भिन्नता की अद्भुत बात ! उसको अपनी जानकर प्रेम से सुन तो सही ! ऐसा मेरा स्वरूप है—ऐसा लक्ष में तो ले ! वह लक्ष में लेते ही अंदर रास्ता हो जायेगा।

चैतन्य का लोहचुंबक लगाते ही जो परिणाम आत्मा में खिंचता आये, वह आत्मा का सच्चा (-शुद्ध) परिणाम है। वह परिणाम ज्ञान-आनंद की पुष्टिरूप है। जो परिणाम परिणमित होकर अंदर न आयें परंतु बाहर रहें, वे रागादि अशुद्ध परिणाम वास्तविकरूप से आत्मा के नहीं हैं।

सविकल्पदशा के समय भी ज्ञानी को ज्ञानभाव वर्तता है अर्थात् विकल्प से भिन्न ज्ञान तो सदैव ज्ञानरूप वर्तता है। कम शुद्धता हो, ज्यादा शुद्धता हो या पूर्ण शुद्धता हो, वह जो शुद्धता का भाव है, वह राग से भिन्न ही है; अतः वह शुद्धता ही मोक्ष का मार्ग है। स्व-वस्तु के आश्रय से शुद्धता है। स्ववस्तु के अनुभव बिना शुद्धता नहीं होती। इस तरह दोनों भिन्न जाने, तब सच्चा अनुभव होता है, और मोक्षमार्ग प्रगट होता है और कहा भी है—

अनुभव रत्नचिंतामणि, अनुभव है रसकूप;
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप॥

[समयसार, कलश ९५-९६]

प्रश्न—आत्मा के लिये युवावस्था का काल किसको माना जाये ?

उत्तर—आत्मा की उग्र आराधनारूपी मुनिदशा का जो अवसर है, वही आत्मा के धर्म के लिये युवावस्थारूप स्व-काल है। धर्म के प्रारंभ का काल (अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान), वह धर्मात्मा का बाल्यकाल है; और केवलज्ञान प्रगट करे, वह उसकी प्रौढ़ दशा है।—इसप्रकार धर्म की तीन दशाएँ हैं।

ज्ञान हुआ तब....

एक तरफ पुण्य-पाप के समस्त परभाव और दूसरी ओर ज्ञानस्वभाव—इन दोनों की भिन्नता जानकर भेदज्ञान किया, तभी शुद्ध स्वरूप को प्रकाशित करता हुआ ज्ञान प्रगटा, वह ज्ञान कैसा है? (तो कहते हैं) कि अतीन्द्रिय सुख-प्रवाह के साथ परिणम रहा है। अहा, अतीन्द्रिय सुख का प्रवाह ज्ञानी के आत्मा में बहता है... वह आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय सुख-प्रवाहरूप परिणमता है।

देखो, यह आत्मा में सुख प्रगट करने की रीति! अन्य तो सारी दुनिया पूर्ण दु:ख से थरथरा रही है। हाल ही में भूकम्प की थरथराहट देखी। परंतु भाई, तेरा आत्मा अध्रुव परभावों में अनादि से थरथरा रहा है; उसको निजस्वरूप में स्थिर कर। नित्य नि:शंक स्वरूप में स्थिरता द्वारा ही निर्भयता व शांति प्रगटती है। भूकंप में लोग कैसे भयभीत व अशांत हो जाते हैं? किंतु भीतर मोह की अस्थिरता में ज्ञान आकुलता से कंपित हो रहा है, अत: दु:खी हो रहा है, अपने को भूलनेरूप दु:ख का भय अज्ञानी को दिखाई नहीं देता; अत: वह उस भय व अशांति से छूटने का उपाय नहीं करता।

जीव जब धर्मी होता है, तब स्वभाव के साधन से ही उसे सुख का अनुभव होता है। उस सुख के लिये उसे शुभविकल्पों या पुण्य-सामग्री की जरूरत नहीं है। पुण्य को साधन बनाये बिना ही, स्वयं अपने ज्ञान द्वारा ही परम सुखरूप परिणमता है।

पुण्य-पाप के कर्तृत्व में रुका हुआ आत्मा निरंतर दु:खी था, अब पुण्य-पाप रहित अतीन्द्रिय ज्ञानरूप शुद्धदशा में परिणमता आत्मा निरंतर सुखी है। उसके सुख में राग की अपेक्षा नहीं है; कोई अन्य वस्तु की भी अपेक्षा नहीं, किसी क्षेत्र या काल की भी अपेक्षा नहीं; ऐसा निरपेक्ष स्वाधीन सुख है।

ऐसे स्वाधीन ज्ञान-सुखरूप परिणमता ज्ञानी रागादि क्रिया को या शरीरादि की क्रिया को अपना कार्य नहीं समझता है। वह भले हो; परंतु उससे भिन्न ज्ञानरूप परिणमता ज्ञानी उसका कर्ता नहीं बनता और उसको वह मोक्ष का साधन नहीं मानता। ऐसा ज्ञान ही ज्ञानी का

कार्य और वही ज्ञानी का चिह्न है। वह ज्ञानी अपने ज्ञानस्वरूप में सदा अकंप वर्तता है।

जिसने जागृत होकर आत्मा को जगाया, उसकी दशा भिन्न प्रकार की हो जाती है। उसके अपने सामर्थ्य से शुद्धस्वरूप का प्रकाश हुआ... परभावों में ज्ञान सोता था, वह अब जागृत होकर परभावों से भिन्न पड़ा और आनंदमय प्रवाह के साथ परिणमने लगा।

ज्ञान का परिणमन ही उसे कहा जाता है कि जो ज्ञानस्वभावरूप ही हो। शुभाशुभ विकल्प, वह ज्ञान का परिणाम नहीं है। विकल्प के समय भी धर्मी का ज्ञान तो ज्ञानरूप ही परिणम रहा है; वही शुद्ध परिणमन है, और उतना ही मोक्ष-उपाय है। इसके अलावा, जितने भी शुभ-अशुभ चारित्ररूप विकल्प हैं, वे सब निज स्वभावरूप नहीं हैं, अतः वे मोक्ष का उपाय नहीं हैं। वे तो मात्र बंध ही के साधन हैं।

शुभ-आचरण को चारित्र कहना, वह कैसा है ?—तो कहते हैं कि कंबल के चित्ररूप सिंह जैसा।

जैसे कंबल में अंकित सिंह, वह कोई सच्चा सिंह थोड़े ही है ?

वैसे ही शुभरागरूप चारित्र, वह कोई सच्चा चारित्र थोड़े ही है ?

जैसे—कंबल में अंकित सिंह किसी को नहीं मारता है, वैसे ही शुभरागरूप चारित्र किसी को तारता नहीं है। शुद्धतारूप जो आचरण है, वही सच्चा मोक्षमार्ग है।

अहो, क्षणभर परभावों से भिन्न पड़ने में, जो परम सुख अनुभव में आता है, उसे ज्ञानी ही जानते हैं... जो सर्वथा परभावों के अभाव द्वारा जो पूर्ण सुखरूप होता है—उसकी बात ही क्या ? चैतन्यभगवान अपने आनंद-समुद्र में मग्न हो जाता है—मानो कोई आनंद का नंदनवन खिला हो ! जो आनंद की गुफा में चले गये, उन्हें बाहर का (परभावों का) वेदन नहीं रहा।

ज्ञान हुआ, तब ऐसी आनंददशा खिली... और मोक्ष की साधना प्रारंभ हुई।

(समयसार, कलश १११)

प्रत्येक जीव का कर्तव्य

हे जीव! यह अमूल्य मानव जीवन पाकर उसको ज्यों-त्यों न गवाँ, आत्महित के लिये संतपुरुष तुझे तेरा जो कर्तव्य बताते हैं, उसको समझकर उसके लिये उद्यमी बन... और अपने जीवन को सफल बना।

अपने आत्मा को पहिचानने का प्रयत्न करना, वही प्रत्येक जीव का प्रथम कर्तव्य है। आजकल बाह्य-लौकिक में, कर्तव्य-कर्तव्य करते हैं, कोई देश का कर्तव्य, कोई कुटुंब का कर्तव्य, कोई पुत्र का कर्तव्य, कोई युवकों का कर्तव्य—इस तरह अनेक प्रकार से बाह्य कर्तव्य मनवाते हैं, और उस बारे में अनेक बड़े-बड़े भाषण करते हैं; परंतु यहाँ तो कहते हैं कि भाई, यह सब बाह्य कर्तव्य तो वृथा हैं, मुफ्त की हैरानी है। अपने आत्मा की पहिचान करना, वही प्रत्येक जीव का सच्चा कर्तव्य है। एक बार भी यदि इस कर्तव्य का पालन करे तो मोक्ष प्राप्त हो जाये।

देखो, ऐसा आत्मा का कर्तव्य! बाह्य में कहीं भी आत्मा का कर्तव्य है?—तो कहते हैं कि नहीं; क्योंकि बाह्य का तो आत्मा कुछ कर नहीं सकता, फिर भी कर्तव्य माने, वह तो मिथ्या-अभिमान है। तेरा स्व-देश तो तेरा आत्मा है। अनंत गुणों से भरपूर तेरा असंख्य प्रदेशी आत्मा ही तेरा 'स्वदेश' है। उसको पहिचानकर, उसकी सेवा (आराधना) कर; वही तेरा कर्तव्य है, इसके अतिरिक्त बाह्य देश, वह तो 'पर-देश' है, उसमें तेरा कर्तव्य नहीं है।

अंतर में शुभराग होता है, वह तो अपना कर्तव्य है या नहीं?—तो कहते हैं कि नहीं; राग भी सच्चा कर्तव्य नहीं। राग करता तो है स्वयं परंतु वह अपना कार्य नहीं—कर्तव्य नहीं; क्योंकि उसमें अपना हित नहीं और जिसमें अपना हित नहीं, वह अपना कर्तव्य कैसे कहा जाये? अंतर में चैतन्यमूर्ति आनंद से भरपूर अपने आत्मा को पहिचानकर, उसके आश्रय से सम्यग्श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रगट करना, वह इस तरह आत्मा को भवदुःख से छुड़ाना वही प्रत्येक आत्मा का कर्तव्य है।

यह देह तेरा नहीं,
अतः देह में तेरा कोई कर्तव्य नहीं,
और देह तुझे शरण नहीं।

तेरी अनंत शक्ति में राग नहीं है,
अत: राग तेरा कर्तव्य नहीं,
और राग तुझे शरण नहीं।
तेरा आत्मा अनंत-शक्ति-संपन्न है,
वही तेरा स्वरूप है,

एवं उस शक्ति की संभाल करके उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करना, वही तेरा कर्तव्य है, और वही तुझे शरणभूत है।

इसलिये उसको पहिचानकर, उसकी शरण ले और तेरा जो कर्तव्य है, उसका पालन कर। मैं पर का कुछ कर दूँ; ऐसी मान्यता में जो रुकता है, वह अपने वास्तविक कर्तव्य को चूक जाता है। अत: हे भव्य! परपदार्थ का कुछ करने की बुद्धि तू छोड़ और आत्महित में अपनी बुद्धि जोड़। आत्मा को पहिचान और उसकी शरण ले। उसकी शरण में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करके अपने आत्मा को भवभ्रमण से छुड़ा... और इस तरह अपने आत्मा के कर्तव्य का पालन कर। यह मनुष्य भव पाकर आत्मा को भवदु:ख से छुड़ाना ही, हे जीव! तेरा कर्तव्य है; इसलिये तू अपने आत्मा को पहिचानने का प्रयत्न कर। (आत्मप्रसिद्धि)

—००—००—

आत्मा का सुख

आत्मा के स्वभाव में सहज सुख है। बाह्य में आनंद न होने पर भी, कल्पना से उसमें जो आनंद मानता है, वह स्वयं आनंदस्वरूप है। अपना आनंद अपने में भरा है, परंतु अपने आनंद को भूला, इसलिये उसका आरोप दूसरे पर करके मानता है कि 'इसमें मेरा आनंद है'—परंतु यह आरोप मिथ्या है—असत्य है।

'पर में मेरा सुख'—इसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा यहाँ और उसका सुख कहीं दूसरी जगह; अर्थात् आत्मा और सुख दोनों भिन्न ही सिद्ध हुए; सुख वह आत्मा का स्वभाव न रहा। परंतु भाई, ऐसा (बिना सुख का) आत्मा नहीं है। आत्मा तो स्वयं सुखस्वरूप है। आत्मा आनंद से खाली नहीं, परंतु आत्मा तो आनंद से भरपूर है। उसको जानते ही आनंद के स्वाद का वेदन होता है।

व्यवहारमूढ़ जीवों का अभिप्राय

[दिगम्बर और श्वेताम्बरों के बीच महान सिद्धांतभेद]

[श्री समयसार गाथा ४१३ पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

आत्मा के भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है; उसके बदले जिनका ऐसा अभिप्राय है कि—'मोक्षमार्ग में प्रथम व्यवहारनय परिणमित होता है और फिर निश्चयनय'—वे व्यवहारमूढ़ हैं। उन्हें आचार्यदेव समझाते हैं कि अरे भाई! तुम्हारा व्यवहार तो अनादिरूढ़ है; आत्मा के निश्चयस्वभाव के भान बिना ऐसा शुभराग तो तुमने अनादि काल से किया है; उसमें तुमने नया क्या किया? अभव्य जीव भी ऐसा व्यवहार तो करते हैं; तो तुम्हारे और उनके अभिप्राय में क्या अंतर हुआ? 'पहले व्यवहार और फिर निश्चय' ऐसा माननेवालों के अभिप्राय में और अनादिकालीन मिथ्यादृष्टि के अभिप्राय में कोई अंतर नहीं है, दोनों व्यवहारमूढ़ हैं।—इस संबंध में दिगम्बर और श्वेताम्बर मतों के बीच महान दृष्टिभेद है; उसका श्री कानजीस्वामी ने इस प्रवचन में स्पष्टीकरण किया है। प्रत्येक जिज्ञासु जीव को यह विषय समझना आवश्यक है।

आत्मा ज्ञानानंदस्वरूप है, उसके ध्रुवस्वभाव में श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता—वही मोक्षमार्ग है; उसके बदले शुद्धात्मा के भान बिना मात्र व्यवहाररत्नत्रय के शुभराग को ही जो मोक्षमार्ग मानता है, उसे आचार्यदेव व्यवहारमूढ़ कहते हैं। वे जैसा व्यवहार करते हैं, वैसा व्यवहार तो जीव ने अनादि से किया है और अभव्य जीव भी वैसा व्यवहार करता है; इसलिये जो व्यवहार का आश्रय करके उसे मोक्षमार्ग मानते हैं, वे जीव अनादिकालीन रूढ़ व्यवहार में ही मूढ़ हैं और यथार्थ विवेकवाले निश्चय में वे अनारूढ़ हैं।

दिगम्बर संत कहते हैं कि—निश्चयस्वभाव के आश्रय से ही मोक्षमार्ग है; निश्चयपूर्वक ही व्यवहार होता है; निश्चय के बिना व्यवहार होता ही नहीं; जो निश्चय का आश्रय करे, वही सम्यक्त्वी है। यह यथार्थ वस्तुस्थिति है; परंतु व्यवहारमूढ़ मिथ्यादृष्टि जीव

उसका विरोध करके कहते हैं कि—मोक्षमार्ग में प्रथम व्यवहार परिणमित होता है और फिर निश्चय है; इसलिये व्यवहारी, वह सम्यक्त्वी है। परंतु उनकी बात महान विपरीत है।

श्रावकों के व्यवहार या व्रतादि के शुभराग को ही जो मोक्ष का कारण मानते हैं और आत्मा के परमार्थ स्वभाव को नहीं जानते, वे अनादिकालीन व्यवहार में ही मूढ़ हैं और प्रौढ़ विवेकवान निश्चय पर वे अनारूढ़ हैं, वे परमार्थशुद्ध ऐसे शुद्धात्मा को नहीं देखते।

पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, देव-गुरु-शास्त्र की विनय इत्यादि शुभराग को अंगीकार करके जो ऐसा मानते हैं कि—'यही मोक्ष का कारण है, यह व्यवहार करते-करते मुक्ति हो जायेगी'—तो वे जीव व्यवहारमूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं। अरे भाई! चैतन्य के निश्चयस्वभाव के भान बिना ऐसा शुभराग तो तूने अनादि काल से किया है—इसमें तूने नया क्या किया? और अभव्य जीव भी ऐसा व्यवहार तो करते हैं तो फिर तुझमें और उनमें क्या अंतर हुआ? तूने पूर्व काल में अनंत बार ऐसा व्यवहार किया, परंतु वह मोक्ष का कारण नहीं हुआ, तो फिर इस समय कहाँ से होगा? इसलिये समझ कि मोक्षमार्ग तो निश्चयस्वभाव के आश्रय से ही है। 'प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय'—ऐसा नहीं है। अकेला शुभरागरूप व्यवहार तो तू अनादि काल से करता आया है, तो उसमें से तू किस राग को 'प्रथम' कहेगा? तेरा माना हुआ व्यवहार तो अनादिरूढ़ है, वह वास्तव में व्यवहार नहीं किंतु व्यवहाराभास है। निश्चय प्रगट हुए बिना व्यवहार किसे कहा जाये? आत्मा के भूतार्थस्वभाव का आश्रय करके निश्चय-श्रद्धा-ज्ञान प्रगट किये, तब शुभराग को उपचार से व्यवहार कहा और पूर्व के राग को भूतनैगमनय से व्यवहार कहा; परंतु निश्चय के बिना व्यवहार कैसा? जिसे अभी प्रमाणज्ञान भी नहीं हुआ है, उसे नय कहाँ से होंगे? निश्चय से भूतार्थस्वभाव का ज्ञान करने से प्रमाणज्ञान हुआ, तब राग के ज्ञान को व्यवहारनय कहा। इसप्रकार निश्चयपूर्वक ही व्यवहार होता है। निश्चयस्वभाव के भान बिना मात्र शुभराग को हम व्यवहार नहीं कहते, वह तो अनादिकालीन व्यवहाराभास है। ऐसा व्यवहार तो अभव्य के भी होता है। 'प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय'—ऐसा माननेवाले के अभिप्राय में, और अनादिकालीन मिथ्यादृष्टि के व्यवहार में कोई अंतर नहीं हैं, दोनों व्यवहारमूढ़ हैं। पुनश्च, 'प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय'—ऐसी मान्यता और 'शुभराग से परितसंसार हो जाता है'—ऐसी मान्यता, इन दोनों में व्यवहारमूढ़ता का अभिप्राय एक समान है।

श्वेताम्बर शास्त्रों में मिथ्यादृष्टि को दया, दानादि के शुभ परिणाम से परितसंसार होना

कहा है। मेघकुमार ने हाथी के भव में खरगोश की दया का पालन किया, इसलिये उसका संसार परित हो गया;—ऐसा कहते हैं, और सुबाहुकुमार के जीव ने सुमुख गाथापति के भव में मुनि को आहारदान दिया, इसलिये उसका परितसंसार हो गया—इसप्रकार के दस दृष्टांतों से वे शुभराग से परितसंसार होना मनाते हैं, परंतु वह महान भूल है। अंतर में चैतन्यस्वभाव के अवलंबन बिना कभी भी भव का अंत नहीं हो सकता। राग तो संसार का कारण है, उससे भवांत कैसे हो सकता है? और मिथ्यादृष्टि को तो अनंत संसार के कारणभूत अनंतानुबंधी का भाव बना है, उसे मिथ्यादृष्टिपने में परितसंसार हो ही नहीं सकता। चैतन्यस्वभाव के अवलंबन से ही परितसंसार होता है, उसके बदले दया-दानादि के शुभराग से परितसंसार होना मानना—वह भी व्यवहारमूढ़ता है। दया-दानादि के शुभभाव तो औदयिकभाव हैं, वे स्वयं संसार हैं, तो उनसे संसार का नाश कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता।

ज्ञायकमूर्ति चैतन्यस्वभाव, वह परमार्थ है, उसके आश्रय से प्रगट हुए निश्चय-सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र—वह मोक्षमार्ग है और निश्चयश्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए, तब राग में उपचार करके उसे व्यवहार कहा जाता है; उसके बदले जो अकेले व्यवहार के आश्रय से मोक्षमार्ग मानता है, वह व्यवहारमूढ़ है; ऐसा व्यवहार तो अनादि से चला आ रहा है। इसलिये वह अनादिरूढ़ है। अज्ञानी लोग कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र के श्रद्धा-ज्ञान तथा पंच महाव्रतादि के शुभरागरूप व्यवहार—वह प्रथम, और फिर उससे निश्चय की प्राप्ति होती है; तो उनसे आचार्य भगवान कहते हैं कि अरे भाई! तुम तो अनादिरूढ़ ऐसे व्यवहार में ही मूढ़ हो, तुम्हारे माने हुए व्यवहार को तो हम व्यवहार भी नहीं कहते, वह तो व्यवहाराभास है। आत्मा के भान बिना जीव तीव्र-मंद राग तो अनादि काल से करता ही आया है; तथापि जो उसे मोक्षमार्ग का कारण मानते हैं, वे जीव व्यवहार में मूढ़ हैं।

देखो, श्वेताम्बरों में ऐसा कहते हैं कि—प्रथम व्यवहारनय परिणमित होता है और फिर निश्चयनय, परंतु यह बात वस्तुस्वरूप से बिल्कुल विपरीत है। अकेली व्यवहारप्रधान दृष्टि हुई, इसलिये सर्वज्ञ से चली आ रही सनातन जैन परंपरा से श्वेताम्बर पृथक् हो गये। वे आत्मा के भानरहित मिथ्यादृष्टि को भी दया-दानादि के शुभपरिणाम से परितसंसार होना मानते हैं; वह अकेली व्यवहारप्रधान दृष्टि है; यहाँ उसे 'अनादिरूढ़ व्यवहार में मूढ़' कहकर आचार्यदेव यथार्थ वस्तुस्थिति समझाते हैं कि—अरे भाई! तू कौन से व्यवहार को प्रथम कहता है? क्या

दया-दानादि के शुभभाव जीव ने अनादि से नहीं किये ? मिथ्यादृष्टिरूप से शुभराग तो अनादि से करता ही आ रहा है; तब फिर उसे 'प्रथम' कैसे कहा जाये ? और उससे परितसंसार भी कैसे हो ? आत्मा के भूतार्थस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट किये बिना परितसंसार होता ही नहीं और राग को व्यवहार कहा ही नहीं जा सकता।

दिगम्बर और श्वेताम्बर की दृष्टि में यह मूलभूत अंतर है; दोनों संप्रदायों के बीच यह महान सिद्धांतभेद है। इस बात को बराबर समझकर निर्णय करने योग्य है।

दिगम्बर संत कहते हैं कि—'निश्चयपूर्वक ही व्यवहार होता है, निश्चय के बिना अकेले राग को व्यवहार नहीं कहा जा सकता।'—यह तो यथार्थ वस्तुस्वरूप है।

श्वेताम्बरों में कहत हैं कि—'व्यवहारनय प्रथम परिणमित होता है और फिर निश्चय'—इसमें महान विपरीत दृष्टि है। उसका स्पष्टीकरण करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि जो व्यवहार अनादिकाल से चला आ रहा है, उसे पहला कैसे कहा जा सकता है ? व्यवहार को पहला मानना, वह अनादि के व्यवहार में ही मूढ़ता है।

और दिगम्बर संत कहते हैं कि—'भयूत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो'—अर्थात् भूतार्थ का आश्रय करनेवाला जीव ही निश्चय से सम्यग्दृष्टि है।

उसके बदले श्वेताम्बर में ऐसा कहते हैं कि—'व्यवहारी सो समकिती कहे भाष्य व्यवहार।'

—इसमें भी महान दृष्टिभेद है।

दिगम्बर संत कहते हैं कि—'निश्चयनयाश्रित मुनिवर प्राप्ति करें निर्वाण की।'

इससे विरुद्ध श्वेताम्बर में कहते हैं कि—'बहु दल दीसे जीवना जी, व्यवहारे शिवयोग।'

दिगम्बर जैनधर्म के सत्य सिद्धांत का विरोध करके आज से लगभग ३०० वर्ष पहले '८४ दिग्पट बोल' में श्वेताम्बर मत का प्रतिपादन करते हुए श्री यशोविजयजी ने कहा है कि:—

'निश्चयनय पहले कहें पीछे लें व्यवहार,
भाषाक्रम जानें नहीं जैनमार्ग को सार।
तातें सो मिथ्यामती जैनक्रिया परिहार,

व्यवहारी सो समकिती कहे भाष्यव्यवहार।
जो नय पहलें परिणमें सोइ कहैं हित होइ;
निश्चय क्यों धुरि परिणमे? सुखम मति करि जोई।'

देखो, यह कौन कहता है?—श्वेताम्बरों की ओर से श्री यशोविजयजी ने दिगम्बरों की टीका करते हुए यह बात कही है; उसमें वे 'प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय'—ऐसा कहते हैं और उसे सूक्ष्ममति मानते हैं। यहाँ दिगम्बर संतों के कथन में उसका उत्तर देते हैं कि—अरे भाई! कौन से व्यवहार को तुझे पहला कहना है? यदि तुझे मंदकषाय को प्रथम कहना हो तो हम कहते हैं कि वह तो अनादि से रूढ़ है; जीव शुभराग तो अनादि काल से करता आ रहा है; उसे जो मोक्षमार्ग मानता है, उसको हम व्यवहारमूढ़ कहते हैं। 'प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय'—ऐसा मानना, वह सूक्ष्ममति नहीं किन्तु स्थूल व्यवहारमूढ़ता है।

और 'प्रथम व्यवहारनय परिणमित होता है'—यह बात ही मिथ्या है, क्योंकि अज्ञानी के मिथ्याज्ञान में सच्चे नय होते ही नहीं। नय तो सम्यक् श्रुतज्ञान का प्रकार है। निश्चयनय से भूतार्थस्वभाव का आश्रय किया, तब सम्यक्श्रुत हुआ; वह ज्ञान जब राग को जाने, तब उसमें व्यवहारनय होता है। इसके अतिरिक्त मिथ्यादृष्टि को व्यवहारनय नहीं होता। अज्ञानी का व्यवहार, वह व्यवहाराभास है। स्वभावोन्मुख होकर निश्चय प्रगट करे तो व्यवहार को व्यवहार कहा जाता है। जैनधर्म का कोई भी बोल लें, उसमें स्वभावोन्मुख होना आता है। स्वभावोन्मुख हुए बिना जैनधर्म के एक भी बोल का यथार्थ निर्णय नहीं हो सकता।

भाषा तो जड़ है; भाषा में व्यवहार आने से कहीं मोक्षमार्ग में व्यवहार की प्रधानता नहीं हो जाती। 'समझाते हुए भाषा में व्यवहार आता है, इसलिये प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय है'—ऐसा जो मानते हैं, उनकी मान्यता मिथ्या है; उन्होंने भाषा की ओर देखा परंतु वस्तुस्वरूप को नहीं देखा। वस्तुस्वरूप ऐसा है कि निश्चय के आश्रय से ही मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है—व्यवहार के आश्रय से मोक्षमार्ग है ही नहीं।

'जैसा सर्वज्ञ के केवलज्ञान में भासित हुआ हो, वैसा होता है'—ऐसा यदि निर्णय करने जाये, तो वहाँ भी ज्ञानस्वरूप को पकड़े बिना केवलज्ञान का निर्णय नहीं होता; इसलिये ज्ञानस्वभावोन्मुख होना ही आया।

क्रमबद्धपर्याय होती है—ऐसा कहें तो वहाँ भी द्रव्य पर ही दृष्टि जाती है, क्योंकि

पर्याय, पर्याय में से नहीं आती किन्तु द्रव्य में से आती है, इसलिये द्रव्य पर दृष्टि गये बिना क्रमबद्धपर्याय का निर्णय भी नहीं होता।

इसीप्रकार व्यवहार का निर्णय करने जाये तो वहाँ भी, निश्चय के बिना व्यवहार नहीं होता—निश्चयपूर्वक ही व्यवहार होता है; इसलिये निश्चय के ज्ञानपूर्वक ही व्यवहार का यथार्थ ज्ञान होता है। यथार्थ निश्चय प्रगट हुआ, तब राग में आरोप करके उसे व्यवहार कहा जाता है। निश्चय प्रगट हुए बिना अकेले राग को व्यवहार कैसे कहा जाये? व्यवहार कहलानेवाला निश्चय जागृत हुए बिना व्यवहार को 'पहला' कैसे कहें? क्योंकि ऐसा व्यवहार तो अनादि काल से कर ही रहा है, इसलिये वह तो अनादिरूढ़ है। क्या अनादि काल में राग की मन्दता नहीं की?—अनंत बार की है; तथापि जो उसे मोक्षमार्ग में पहला मानता है, वह अनादिकालीन व्यवहार में ही मूढ़ है।

आचार्यदेव उससे कहते हैं कि अरे भाई! तू विचार तो कर! मोक्षमार्ग ऐसा अपूर्व है कि जिसे पूर्वकाल में कभी नहीं किया, और उसका प्रारंभ भी अपूर्वभाव से होता है। राग तो पूर्वभव में अनंत बार किया है, परंतु उसके द्वारा मोक्षमार्ग का प्रारंभ नहीं होता। आत्मा ने अनादि काल से संसार में परिभ्रमण करते हुए देव-गुरु-शास्त्र की व्यवहारश्रद्धा की है, शास्त्रज्ञान किया है और पंच महाव्रत का पालन किया है;—इसप्रकार व्यवहाररत्नत्रय अर्थात् शुभराग तो अनादि काल से किया है; उस व्यवहार में ही जो ममकार करता है अर्थात् जो ऐसा मानता हे कि मोक्षमार्ग में व्यवहार पहले परिणमित होता है—वह जीव अनादिरूढ़ व्यवहार में मूढ़ है; उसकी अनादिकालीन संसारदशा में कोई अंतर नहीं पड़ा है। मोक्षमार्ग में निश्चय क्या और व्यवहार क्या—उसका भी उसे भान नहीं है। राग को व्यवहार कहनेवाले कौन?—जो निश्चय का भान करके जागृत हुआ, वह शुभराग को व्यवहाररूप से जानता है। निश्चयरहित अकेला व्यवहार तो अंध है।

निश्चयस्वभाव के भान बिना भले ही अनेक प्रकार का शुभराग करे, व्रत-तप-दया-दान करे, शास्त्र पढ़े, परंतु वह सब अनादिरूढ़ व्यवहार है। अज्ञानी लोग जिस राग को व्यवहार कहते हैं, उसे तो यहाँ 'अनादिरूढ़' कहकर आचार्यदेव ने महान सिद्धांत रख दिया है। परमार्थस्वरूप आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान तो करता नहीं है और कषाय की मंदता में ही लगे रहकर जो ऐसा मानता है कि उससे मोक्षमार्ग प्रगट हो जायेगा, वह जीव अनादिरूढ़ व्यवहार में विमूढ़

मिथ्यादृष्टि है। प्रथम व्यवहार परिणमित होता है—ऐसा मानकर वे व्यवहार के ही आश्रय में लगे रहते हैं। व्यवहार का आश्रय छोड़कर भूतार्थस्वभाव का आश्रय किये बिना कभी भी सम्यग्दर्शन या मोक्षमार्ग नहीं होता और मिथ्यात्व दूर नहीं होता।

कोई कहे कि—पहले सत्य का श्रवण करे, तब फिर बाद में समझ में आता है; इसलिये देखो, पहले व्यवहार आया या नहीं ?—तो कहते हैं कि नहीं; क्योंकि चैतन्यवस्तु शरीर-मन-वाणी और राग से पार है—इसप्रकार चैतन्य की प्रतीतिपूर्वक जो सुने, उसी ने 'सुना' कहा जाता है। जिसे चैतन्य की रुचि नहीं है, उस जीव ने आत्मा की बात अनादि काल से सुनी ही नहीं है। आगे चौथी गाथा में यह बात कही थी कि शुद्ध आत्मा की बात जीव ने कभी सुनी ही नहीं है। शब्द तो कानों में पड़े, तथापि कहते हैं कि 'सुनी ही नहीं है,' क्योंकि अंतर में उसप्रकार की रुचि प्रगट नहीं की, इसलिये निश्चय के बिना व्यवहार किसका कहा जाये ? उपादान जागृत हुए बिना श्रवण को किसका निमित्त कहा जाये ?

प्रवचनसार के चरणानुयोग में भी अन्त में ऐसा कहा है कि शुद्धोपयोगवालों की ही मुक्ति है। चैतन्य का स्वभाव जानने का है; परंतु इस ज्ञेय में ऐसा क्यों ?—ऐसा विकल्प करने का चैतन्य का स्वभाव नहीं है; उसमें बीच में शुभ-अशुभवृत्ति आये, वह मोक्ष का कारण नहीं है। शुद्धोपयोग को ही मोक्ष का कारण कहा है। वहाँ बीच में मुनि को कैसा शुभराग होता है, उसकी पहिचान कराई है; परंतु उस शुभ को कोई मोक्ष का कारण मान ले तो कहते हैं कि शुभराग मोक्ष का कारण नहीं है; मोक्ष तो शुद्धोपयोग से ही होता है।

जो जीव ऐसा कहता है कि पहले व्यवहार और फिर निश्चय होता है—तो उससे कहते हैं कि कौन सा व्यवहार पहले होता है ? निश्चय प्रगट हुए बिना शुभराग को व्यवहाररूप से जानेगा कौन ? चैतन्यवस्तु की ओर उन्मुख होकर उसका ज्ञान कर तो व्यवहार का ज्ञान होगा। चैतन्यवस्तु को पकड़ने में किसी राग का—व्यवहार का आश्रय है ही नहीं; विकल्पातीत वस्तु को पकड़ने में अन्य कोई साधन है ही नहीं। 'ज्ञायक' को पकड़ में लिया, तब राग को जाननेवाला जागृत हुआ और उस समय राग को व्यवहार कहा। यह वस्तु बाह्य क्षयोपशम की या शास्त्रों के पाण्डित्य की नहीं है, यह तो अंतर्दृष्टि की वस्तु है। जो मोक्षमार्ग में पहले व्यवहार को मानता है, वह जीव जैनमार्ग को नहीं जानता परंतु अनादिकालीन व्यवहार में मूढ़ है।

'जो निश्चयपूर्वक ही व्यवहार मानते हैं, परंतु प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय—ऐसा

नहीं जानते, वे भाषाक्रम को नहीं जानते;'—ऐसा अज्ञानी कहते हैं। परंतु भाई! भाषा में व्यवहार आता है, उससे क्या हुआ? क्या धर्म भाषा के आश्रित है? 'भाई, तू सुन!'—ऐसा कहा वहाँ कथन में व्यवहार तो आया, परंतु उसका मतलब यह नहीं है कि व्यवहारनय पहले परिणमित होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि 'व्यवहारी सो सम्यक्त्वी'—किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है; निश्चय के आश्रय से ही सम्यक्त्व है। मोक्षमार्ग में जो पहले व्यवहार को मानता है अथवा व्यवहार के आश्रय से मोक्षमार्ग होना मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है;—ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य आदि दिगम्बर संतों ने डंका पीटकर स्पष्ट घोषित किया है। भगवान, शांत हो! बाद-विवाद को छोड़कर वस्तुस्थिति को समझने का प्रयत्न कर! शुभराग परिणति तो अनादि से चली आ रही है; उसे व्यवहार कैसे कहा जा सकता है? इसलिये उस अनादिरूढ़ व्यवहार का आश्रय छोड़ और ज्ञायकतत्त्व की दृष्टि कर! मैं ज्ञायक हूँ—इसप्रकार भूतार्थस्वभाव को दृष्टि में लिया, तब निश्चय प्रगट हुआ, और तभी राग को उपचार से व्यवहार कहा गया; इसलिये मोक्षमार्ग में निश्चय की ही प्रधानता है—व्यवहार की प्रधानता नहीं है। अनुपचार मोक्षमार्ग प्रगट हुए बिना राग में उपचार किसका? निश्चय के बिना व्यवहार किसका? उपादान के बिना निमित्त किसका?

ज्ञायकतत्त्व पर जिसकी दृष्टि नहीं है, और अनेक प्रकार के जो शुभ विकल्प उठें, उनकी रुचि करके उन्हीं को मोक्ष का साधन मानता है, वह जीव 'समयसार' को नहीं देखता। विकल्प तो असार हैं; परम सारभूत ऐसा शुद्ध आत्मा है, उसे वह जानता नहीं है। पंच महाव्रतादि शुभविकल्पों को मोक्षमार्ग मानकर उनका ममकार करता है, वह जीव अनादिरूढ़ व्यवहार में मूढ़ वर्त रहा है, और आत्मा के निश्चयस्वभाव में अनारूढ़ है। शुभ-अशुभराग अनादि काल से करता आ रहा है, उसी में मोहित होकर मूढ़रूप से वर्तता है; परंतु शुभाशुभ वृत्तियाँ तो क्षणिक हैं और मैं तो ज्ञायकतत्त्व भूतार्थ हूँ—ऐसा प्रौढ़ विवेक वह अज्ञानी नहीं करता, इसलिये उसे कभी धर्म नहीं होता। शुभ को व्यवहार तभी कहा जाता है, जब उसका निषेध करनेवाला निश्चय प्रगट हो जाये; इसके अतिरिक्त शुभ को व्यवहाररूप से भी नहीं गिनते। जो शुभराग से अपने को मुनि या श्रावक मानता है, वह जीव अनादिरूढ़ व्यवहार में मूढ़ है और प्रौढ़ विवेकवान निश्चय पर वह अनारूढ़ है। आचार्यदेव ने अकेले व्यवहार के

लिये 'अनादिरूढ़' विशेष लगाया, और निश्चय के लिये 'प्रौढ़ विवेकवान'—ऐसा विशेष लगाया। इसप्रकार आमने-सामने विशेषणों का उपयोग किया है। शुभराग में मोक्षमार्ग मानकर जो उसमें वर्तता है, उससे कहते हैं कि तेरा व्यवहार तो अनादिरूढ़ है, राग और विकल्प से पार भूतार्थ चैतन्यस्वभाव को दृष्टि में लेना, वह प्रौढ़ विवेक है।—ऐसे प्रौढ़ विवेक द्वारा जो भूतार्थस्वभाव का अवलंबन नहीं करता और अनादिकालीन राग का अवलंबन नहीं छोड़ता; तथा जो ऐसा मानता है कि शुभराग करते-करते निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट हो जायेगा—वह जीव अनादिरूढ़ व्यवहार में मूढ़ है और प्रौढ़ विवेकवान निश्चय पर वह अनारूढ़ है; जिस भाव से अनादि काल से संसार में भटक रहा है, उसी में वह मूढ़ है।

व्यवहार करते-करते निश्चय प्रगट नहीं होता; किन्तु प्रथम से ही पराश्रय की श्रद्धा छोड़कर, व्यवहार का अवलंबन छोड़कर भूतार्थस्वभाव का अवलंबन करने से ही निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट होता है। जिसप्रकार काले कोयले को यदि सफेद बनाना हो तो उसे जला देना पड़ता है; परंतु उसे धोने से वह सफेद नहीं होता। उसीप्रकार संसार काले कोयले जैसा है; शुभराग भी संसार है; उस राग के अवलंबन से संसार नहीं मिटता, परंतु रागरहित चैतन्यस्वभाव के अवलंबन से संसार मिट जाता है। संसारमार्ग और मोक्षमार्ग—इन दोनों भावों की जाति पृथक् है। अनादि काल से जिस भाव से संसार में भटक रहा है, उस भाव से मोक्षमार्ग का प्रारंभ कैसे हो सकता है? अज्ञानी कहते हैं कि 'शुभराग व्यवहार तो है न!' परंतु भाई! शुभराग को व्यवहार कब कहा जाता है?—जब उसकी रुचि छोड़कर निश्चय प्रगट करे तब। चैतन्य ज्ञायकतत्त्व की अस्ति को स्वीकार करके विकार की—व्यवहार की रुचि छोड़ तो तेरे शुभराग को व्यवहार कहा जाये। जो ऐसा मानता है कि 'प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय;' उसके तो राग की—व्यवहार की रुचि है, उसके शुभराग को तो वास्तव में व्यवहार भी नहीं कहा जा सकता।

देखो, यह दिगम्बर संतों की वाणी! दिगम्बर संतों ने यथार्थ मोक्षमार्ग को बना रखा है। निश्चयनय ऐसा प्रौढ़ विवेकवान है कि उसके अवलंबन से आत्मा और राग का भेदज्ञान होता है—व्यवहार के अवलंबन से भेदज्ञान नहीं होता! जब स्वयं ज्ञायक आत्मा की दृष्टि करे, तब शुभराग को व्यवहार कहा जाता है। निश्चय की दृष्टि के बिना सब व्यर्थ है। व्यवहार भले हो, निमित्त भले हो, परंतु उनके आश्रय से आत्मा का धर्म प्रगट ही, बना रहे, अथवा धर्म में वृद्धि

हो ऐसा नहीं है। निश्चय ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से ही धर्म प्रगट होता है, बना रहता है और उसमें वृद्धि होती है।

उपदेश-वचनों में पापभाव से छुड़ाने के लिये कभी-कभी ऐसा कहा जाता है कि शुभराग करेगा तो धर्म के निमित्त उपस्थित रहेंगे! परंतु वास्तव में उपादान में धर्म प्रगट हुए बिना निमित्त किसका? अशुभ को छुड़ाने के लिये ही वह बात कही है; वहाँ कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि शुभ करते-करते धर्म होगा—शुभ को मोक्षमार्ग नहीं कहना है। जीवों को विषय-कषायों के तीव्र पापभाव से छुड़ाने के लिये शास्त्रों में शुभभाव करने का भी उपदेश दिया है; परंतु वहाँ ऐसा सिद्धांत स्थापित नहीं करना है कि शुभभाव करते-करते धर्म हो जायेगा। शुभराग को पकड़कर जो उसकी रुचि और उत्साह करते हैं, वे जीव प्रौढ़ विवेकवान निश्चय पर आरूढ़ नहीं हुए हैं अर्थात् मोक्षमार्ग में नहीं आये हैं, परंतु अनादिकालीन व्यवहार में ही मूढ़ होकर पड़े हैं। व्यवहार में मूढ़ होकर विपरीत मार्ग पर चढ़े सो चढ़े, परंतु अनादि से वह शुभराग करने पर भी अभी पार नहीं आया! मोक्षमार्ग में बीच में शुभराग आता अवश्य है, परंतु उस राग के अवलंबन से मोक्षमार्ग नहीं होता—मोक्षमार्ग तो आत्मा के भूतार्थस्वभाव के अवलंबन से ही है। जो ऐसे निश्चयमोक्षमार्ग को नहीं जानते और शुभराग को मोक्षमार्ग मानकर उसी में मूढ़रूप से पड़े हैं, वे जीव आत्मा के परमार्थ स्वभाव में अनारूढ़ वर्तते हुए शुद्ध आत्मा को नहीं देखते।

भगवान अर्थात् महिमावंत ऐसा भूतार्थरूप शुद्ध आत्मा है; उसकी जो महिमा नहीं करते और अनादि के राग को व्यवहार मानकर उसकी महिमा करते हैं, वे व्यवहार में मूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं; उन्हें मुनित्व तो कहाँ से होगा?

'बहु दल दीसे जीवनां जी व्यवहार शिवयोग—अर्थात् व्यवहार के अवलंबन से अनेक जीव मुक्ति को प्राप्त हुए हैं'—ऐसा व्यवहाराभासी अज्ञानी कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि—जो निश्चय पर आरूढ़ हैं, वे ही मोक्ष प्राप्त करते हैं; जो जीव निश्चय पर आरूढ़ नहीं हैं और अनादिरूढ़ व्यवहार में ही मूढ़ हैं, उनकी तीन काल में मुक्ति नहीं होती। भूतार्थस्वभाव के भान बिना तो सब इकाईरहित शून्यों के समान हैं। जो भगवान चैतन्यरूप शुद्ध आत्मा को जानकर प्रौढ़ विवेकवान निश्चय पर आरूढ़ वर्तते हैं, उन्हीं को अल्प काल में मुक्ति की प्राप्ति होती है; दूसरों को कभी मुक्ति नहीं होती।●

चारित्रधर्म

[वीतरागचारित्र ही इष्ट है, शुभराग आस्रवतत्त्व है-इष्ट नहीं है।]

[प्रवचनसार के प्रारंभ में पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्काररूप मंगलाचरण किया और शुद्धोपयोगरूप वीतरागचारित्र, वही साक्षात् मोक्षमार्ग है —ऐसा दर्शाकर मोक्षमार्ग को आचार्यदेव ने अंगीकार किया है।]

अब छठवीं गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि वीतरागचारित्र, वह इष्ट फलवाला है, वही सुखरूप मोक्षदाता है; इसलिये वह उपादेय है और राग अनिष्ट फल देनेवाला है, राग का फल बंधन और क्लेश है; अतः वह हेय है।

चारित्र को धर्म कहा है—किंतु कौन सा चारित्र? वीतरागभावरूप चारित्र; जो मोह-क्षोभ (राग-द्वेष) रहित चारित्र है, वह धर्म है, उसका फल मोक्ष है। शुभराग, वह चारित्र नहीं है, वह तो कषायकण है, उससे तो क्लेश और बंधन होता है। अरे! ऐसा स्पष्ट धर्म का स्वरूप होने पर भी अज्ञानीजन शुभराग को—पुण्य को सच्चा मानते हैं। शुभराग में या पुण्य के फल में सुख नहीं है, यह बात आचार्यदेव इस प्रवचनसार में अनेक प्रकार युक्ति से स्पष्ट कहते हैं।

अहा, मोक्षमार्ग के पथिक मुनिवर तो शुद्धोपयोग के द्वारा मोक्ष को साध्य करना चाहते हैं; बीच में जो शुभराग आ पड़ता है, उसकी भावना का आदर नहीं है, उस राग के फल में तो पुण्यबंधन होता है और भवभ्रमण करना पड़ता है।

देखो, पाँच पांडव मुनिवर... शत्रुंजय गिरि पर ध्यान में खड़े थे; वहाँ धधकते हुए तप्त लोहे के गहने दुर्योधन के भानेज ने पहचाने-उपसर्ग किया, तब उनमें से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन, यह तीन मुनि तो सरागचारित्र को छोड़ वीतरागचारित्र के द्वारा स्वरूप में विशेष निश्चल हो केवलज्ञान प्रगट करके मोक्ष को प्राप्त हुए और शेष दो नकुल और सहदेव मुनि को ऐसी वृत्ति उत्पन्न हुई कि—'अरे, भाईयों को उपसर्ग के समय क्या होता होगा?'—इसप्रकार शुभ विकल्परूप-सरागचारित्र में अटक गये और शुभराग के फल में सर्वार्थसिद्धि-देवलोक में गये, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष को प्राप्त करेंगे। इसप्रकार शुभराग के कारण दो भव हुए। इसलिये ऐसा शुभरागयुक्त सरागचारित्र तो इष्ट फलरूप मोक्ष को रोकनेवाला है और वीतरागचारित्र ही मोक्षरूप इष्टफल को देनेवाला है; अतः मुमुक्षु को वीतरागचारित्र ग्रहण

करनेयोग्य है, और सरागचारित्र छोड़ने योग्य है। सरागचारित्र तो देवलोकरूप अनिष्ट फल देनेवाला है। अरे, स्वर्ग के विषय कहीं धर्मी को इष्ट नहीं हैं; आत्मा का अतीन्द्रिय सुख, वही धर्मी को इष्ट है। शुभराग इन्द्रिय-सुखदाता है; अतीन्द्रिय सुख में तो वह बाधक ही है—रोकनेवाला ही है—इसलिये वह अनिष्ट है, छोड़नेयोग्य है।

अहो, आचार्यदेव ने कितनी स्पष्ट बात समझायी है। शुभराग को स्पष्टतया अनिष्ट फल दाता कहा है; और अज्ञानी उसे मोक्ष का कारण मानता है; परंतु वीतरागचारित्र तीनों काल इष्ट फल दाता होने से वही मोक्षार्थी को ग्रहण करने योग्य है। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान भी यद्यपि मोक्षमार्ग है, परंतु उसके साथ स्वरूपस्थिरतारूप वीतरागचारित्र प्रगट किये बिना मोक्षमार्ग अखंड नहीं होता; साथ-साथ भूमिकानुसार जितना राग शेष रहता है, उससे जीव स्वर्ग के वैभवरूप क्लेश को पाता है, अतः वह कुछ भी मुमुक्षु को इष्ट नहीं है।

शुभराग तो स्वयं विषमभावरूप होने से उसमें आत्मिक शान्ति नहीं है। मोक्ष के कारणरूप जो साम्यभाव है, स्वरूप में प्रवृत्ति के द्वारा राग-द्वेष रहित शुद्ध परिणाम प्रगट होते हैं, उसका नाम चारित्र है, और उसी में परम शान्ति का माधुर्य है, वह धर्म है, आत्मा का स्वभाव भी वह है।—ऐसे चारित्र को भगवान ने मोक्ष का साधन कहा है; और ऐसा चारित्र भी सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक ही होता है और उसे ही मुनित्व होता है। जिसकी मूल में सम्यग्दर्शन ही नहीं है, शुभराग को सुख का कारण मानकर उपादेय समझता है, उसे तो चारित्र ही कैसा? और मुनित्व भी कैसा?

राग तो संयोगी भाव है, परसमयरूप प्रवृत्ति है; और चारित्र, वह तो स्वभावभाव है, स्वसमयप्रवृत्तिरूप है। अरे, सच्चे चारित्र की पहिचान भी जीवों को दुर्लभ है। बाह्य में देह की क्रिया में, नग्न शरीर में या व्रतादि के शुभराग में ही अज्ञानी ने चारित्र मान रखा है, किंतु वह चारित्र है ही नहीं; चारित्र तो आत्मगुण है, उसमें शुद्ध चैतन्य प्रकाशित है; जिसमें अतीन्द्रिय आनंद का घोलन है, ऐसा सर्वज्ञ कथित चारित्र, वही धर्मी को ग्रहण करनेयोग्य हैं।

देखो, आचार्यदेव चारित्र ग्रहण करने का उपदेश दे रहे हैं। लोग कहते हैं कि—तुम चारित्र को मानते हो? हाँ—किंतु कौनसा चारित्र? अज्ञानियों का माना हुआ चारित्र, वह तो चारित्र ही नहीं है, वह तो क्लेश है; यह तो अंतर में चैतन्य के अनुभव में वीतरागी लीनतारूप चारित्र की बात है—कि जिसके ग्रहण से परम इष्ट ऐसे मोक्षपद की प्राप्ति होती है।

देखो, मोक्ष के लिये कैसे चारित्र की भावना करनेयोग्य है? उसका स्वरूप स्वयं आचार्यदेव ऐसी चारित्रदशा में रहकर बतला रहे हैं; स्वयं को अनुभव में आ रही है, ऐसी चारित्रदशा का यह कथन है। जो स्वयं ने मोक्ष के स्वयंवर में अंगीकार की है—इष्ट है और बीच में राग आता है, वह हमारा इष्ट नहीं, उसको तो छोड़कर हम स्वरूप में अवस्थित होना चाहते हैं। क्षण-क्षण में बुद्धिपूर्वक के विकल्प टूटकर के निर्विकल्प शुद्धोपयोग होता है—ऐसी चारित्रदशा में वर्तते हुए मुनिराज का यह कथन है।

अरे भाई! ऐसी वीतरागता को समझ तो सही। मोक्ष के हेतु ऐसी वीतरागता ही अंगीकार करनेयोग्य है, राग का एक कण भी रखनेयोग्य नहीं है। ऐसा दृढ़ निर्णय तो कर। निर्णय और श्रद्धान सच्चे होंगे तो चारित्रदशा का अवसर आयेगा; किंतु श्रद्धा में भूल होगी तो चारित्र कहाँ से आयेगा? अरे! सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित का शुभभाव राग है, वह भी अनिष्ट फल दाता है। फिर अज्ञानी के शुभराग की तो बात ही क्या? चारित्र, वह राग या शरीर की क्रिया नहीं है। चारित्र, चैतन्य के चरणरूप है। निजस्वरूप की जिसको खबर भी नहीं है, वह कहाँ चरण-विश्रांति करेगा?

शुभराग भूमिकानुसार आता है किंतु वह वास्तव में चारित्र है ही नहीं; किंतु चारित्रदशा हो वहाँ सहचर देखकर उसमें चारित्र का उपचार किया है। जो सत्य वीतरागचारित्र को भूलकर राग को ही सच्चा चारित्र मान रहा है, उसे तो मिथ्यात्व है, अर्थात् सच्चा या उपचार एक भी चारित्र उसे नहीं है; जहाँ सच्चा चारित्र हो, वहाँ उचित राग में आरोपरूप व्यवहार होता है। सत्यार्थ स्वरूप की जिसे पहचान नहीं, उसे व्यवहार की भी खबर नहीं है, सच्चे निश्चयसहित व्यवहार होता है। जहाँ निश्चयचारित्र है नहीं, फिर भी उसे सच्चा चारित्र मान लेता है तो विपरीत मान्यतावश उसे मिथ्याश्रद्धा होती है। आचार्यदेव ने सरागचारित्र अर्थात् व्यवहार -चारित्र के शुभराग को बंध का कारण-क्लेश कहकर स्पष्ट बतलाया है कि वह मोक्षमार्ग नहीं है, वह तो अनिष्ट है, अनिष्ट फल दाता है, सच्चा चारित्र तो एक वीतरागभाव है, जो इष्ट ऐसे मोक्षफल को देनेवाला है। ऐसा चारित्र धर्म का स्वरूप प्रवचनसार की ७वीं गाथा में कहते हैं।

चारित्र वह धर्म है

मोक्ष का कारण तो वीतरागभाव है, वीतरागभावरूप चारित्र धर्म है। साम्यभाव, वीतरागभाव धर्म है। सरागचारित्र में शुभराग है, वह तो बंध का कारण है, वह धर्म नहीं है, वह

जीव का स्वभाव नहीं है, चारित्रधर्म जीव का स्वभाव है—निर्विकारी शुद्ध परिणाम है।

मोह-क्षोभ रहित अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष रहित ऐसे समभावरूप जो आत्मपरिणाम, वह चारित्र धर्म है, जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान के बिना नहीं होता। सम्यग्दर्शन सहित जो शुभराग है, वह कहीं चारित्र नहीं है; चारित्र तो रागरहित स्वाश्रित निर्मलभाव ही चारित्र है। जिसने स्व-पर की भिन्नता जानकर स्व-स्वभाव में एकाग्रता की है, उसे ही स्व-समय में प्रवृत्तिरूप चारित्र होता है। ऐसे चारित्र में शुद्ध चैतन्य प्रकाश करता है, चैतन्य का शुद्धप्रकाशन ही चारित्र है। ऐसा चारित्र, वह इष्ट फल-मोक्ष दाता है। शुभराग को अज्ञानी चारित्र मान रहा है किंतु इष्ट-फल देनेवाला नहीं है, राग तो क्लेश देनेवाला है।

भगवान आत्मा चैतन्यप्रकाशी सूर्य है, उसकी चैतन्यकिरणों में रागादि मैल नहीं, चैतन्य का प्रतपनरूप चारित्र, वह राग की प्रवृत्ति से रहित है; आप चारित्र की क्रिया मानते हो?—तो कहते हैं कि हाँ। चारित्र की क्रिया कैसी होती है?—कि अपने शुद्धस्वरूप में प्रवृत्तिरूप क्रिया, वह चारित्र की क्रिया है, ऐसी क्रिया द्वारा मोक्ष सधता है, मोक्ष की साधक ऐसी चारित्र क्रिया को अज्ञानी पहिचानता नहीं। अहो! चारित्रदशा का ऐसा वीतराग-स्वरूप! इस समय में तो वह सुनने को भी महा भाग्य से मिलता है तो वैसी साक्षात् चारित्रदशा की महिमा की क्या बात! यह समरसरूप चारित्र भवाग्नि के ताप को शांत करनेवाला है। चैतन्य के अतीन्द्रिय शांतरस में लीन हुए मुनियों की चारित्रदशा होती है। दर्शनमोह और चारित्रमोह दोनों का नाश करके, शुद्धात्मा की प्रतीति ओर उसमें एकाग्रता हो, तब चारित्रदशा और मुनिपना प्रगट होता है। अहा, मुनि हुए, वे परमेष्ठी हुए; जगत्पूज्य सिद्धों की और अरिहंतों की श्रेणी में बैठे। शुद्धोपयोगरूप निर्विकल्पदशा में ही मुनिपना प्रगट होता है।

प्रथम सातवाँ गुणस्थान होता है, फिर सविकल्पदशा होने पर छट्ठा गुणस्थान होता है, ऐसा ही मुनिदशा का क्रम है। प्रथम छठवाँ गुणस्थान आये और फिर सातवाँ—ऐसा नहीं है। सर्व परिग्रह से रहित होकर आत्मा के ध्यान में एकाग्र होने पर सातवाँ गुणस्थान प्रगट होता है, तब मुनिदशा हुई कहलाती है। ऐसी दशा बिना मुनिपना, वह सच्चा मुनिपना नहीं है और उसको सच्चा चारित्र नहीं होता। अंतर की शुद्धि के बिना कदाचित् शुभराग से पंचमहाव्रत पाले तो वह कोई मोक्ष का कारणरूप-चारित्ररूप नहीं है, वह तो पुण्यबंध का और स्वर्ग के क्लेश का कारण है।

शुभराग, वह भी मोह का ही प्रकार है; चारित्र तो निर्मोह-परिणाम हैं, ऐसे शुद्ध परिणाम से परिणमित हुआ जीव शुद्ध है, वह स्वयं चारित्र है। चारित्र, वह जीव से अलग कोई परिणाम नहीं। निजशुद्धपरिणतिरूप धर्म, वह ही सच्चा धर्म है और पंचपरमेष्ठी भगवान आदि की भक्तिरूप शुभराग, वह व्यवहार धर्म है अर्थात् पुण्यबंध का कारण है; परंतु उसी को मोक्ष के कारणरूप परमार्थ धर्म मान ले तो उसे पापानुबंधी पुण्य है, जो मिथ्यात्वसहित ही बँधता है। यहाँ तो प्रथम से ही 'ज्ञान-दर्शनस्वरूप स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष ऐसा मैं पंच परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ'—इसप्रकार अपनी प्रतीति सहित की बात है। आत्मा की सम्यक्श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक शुद्धोपयोगरूप वीतरागचारित्र की भावना है, बीच में शुभराग आये, उसकी धर्मी को भावना नहीं है।

शुभराग, वह शुभपरिणति है, वह शुद्धपरिणति नहीं; आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वे तीनों शुद्ध परिणतिरूप हैं, उस शुद्धपरिणति द्वारा ही मुनिदशा होती है; शुद्धपरिणति के बिना सम्यग्दर्शन-मुनिपना या केवलज्ञान कुछ भी नहीं होता। शुद्धपरिणति, वही धर्म है, वही मिथ्यात्वादि भावरूप संसार में डूबते हुए आत्मा का उद्धार करके शुद्ध चैतन्यस्वरूप में स्थिर करती है। आगे कहेंगे कि हे भव्य जीवो! यदि तुमको दुःख से मुक्त होने की भावना हो तो पंचपरमेष्ठी को प्रणाम करके ऐसे शुद्धोपयोगरूप वीतरागचारित्र को अंगीकार करो! हम तो ऐसी चारित्रदशा का अनुभव कर रहे हैं, और तुम भी अंगीकार करना चाहते हो तो 'उस मार्ग के प्रणेता हम यह खड़े हैं।'

ज्ञानी के परिणमन में अध्यात्मरस उछलता है। चैतन्य के स्वच्छ महल में रागरूपी मैल कहाँ से आयेगा? ज्ञानी राग से पृथक् का पृथक् रहकर अपनी निर्मल पर्याय को तन्मयरूप से जानता है। भेदज्ञान द्वारा छान-बीन कर राग को चैतन्य से अत्यन्त भिन्न कर दिया है। कैसा भिन्न?—कि जिसप्रकार परद्रव्य भिन्न हैं, वैसे ही राग भी चैतन्य से भिन्न है।—ऐसे भेदज्ञान के बिना साधकत्व होता ही नहीं। चैतन्य को तथा राग को स्पष्ट भिन्न जाने बिना किसे साधना और किसे छोड़ना—उसका निर्णय ही कहाँ से करेगा? और निर्णय के बिना साधकत्व का पुरुषार्थ कहाँ से प्रारंभ होगा? भेदज्ञान द्वारा दृढ़ निर्णय के बल बिना साधकपने का-चैतन्य की ओर का पुरुषार्थ प्रारंभ नहीं होता।

आत्मा-अनात्मा का सच्चा ज्ञान

[मोक्षमार्ग में प्रवीण दिगम्बर संतों का बतलाया हुआ अपूर्व मार्ग]

सम्यग्दृष्टि को राग नहीं है, इसलिये बंधन नहीं है-ऐसा कहा। सम्यग्दृष्टि को राग क्यों नहीं? (श्रद्धा-दृष्टि-रुचि में) निरंतर अपने ज्ञानस्वभाव का ही स्वीकार है, उस ज्ञान के भाव में राग नहीं है; और जो जीव ज्ञानभाव में राग के अंश को मिला लेता है, (राग से भला मानता है, राग करनेयोग्य मानता है) वह रागी जीव सम्यग्दृष्टि नहीं है—यह बात यहाँ आत्मा और अनात्मा का भेदज्ञान कराकर आचार्यदेव समझाते हैं।

❀ ज्ञानस्वभाव से भरा हुआ स्वतत्त्व आत्मा है।

❀ ज्ञान के अतिरिक्त अन्य जो रागादिभाव हैं, वह अज्ञानमय हैं—अनात्मा हैं। राग, रागरूप ही है, वह कुछ ज्ञानमयभाव नहीं है; इसलिये उसे अज्ञानमय कहा है।

❀ सच्चा आत्मा किसको कहना? और उस आत्मा के अतिरिक्त अनात्मा किसको कहना? उसका यथार्थ भेदज्ञान जीव ने कभी नहीं किया।

❀ रागांश के साथ भी जिसके एकत्वबुद्धि है, राग के एक कण को भी जो ज्ञान के साथ मिश्रण करता है, वह अज्ञानी है, क्योंकि वह अनात्मभाव को आत्मा में मिला लेता है। जो ज्ञानमय भाव नहीं है, उसे ज्ञानमय .... इसलिये उसे आत्मा-अनात्मा का सच्चा भेदज्ञान नहीं है।

❀ ज्ञानी तो आत्मा को ज्ञानमय ही मानते हैं; ज्ञानमय एक भाव में रागादि का प्रवेश नहीं है। राग अर्थात् अनात्मा, उसके परिहार के द्वारा ज्ञानमय आत्मा की सिद्धि होती है। यह बात समयसारजी गाथा २०१-२ में कहते हैं—

अणुमात्र भी रागादि का, सद्भाव वर्त रहा जिसे,
वह सर्व आगम-ज्ञानी भी, नहीं जानता निज आत्म को॥२०१॥
नहीं जानता जहाँ आत्मा को ही, अनात्म भी नहीं जानता।
को रीत हो सुदृष्टि जो जीव-अजीव को नहीं जानता॥२०२॥

❀ इसमें ज्ञान और राग के भेदज्ञान की अपूर्व बात है। ज्ञानी की परिणति कैसी होती है और अज्ञानी की परिणति कैसी होती है, उसे पहिचानने से भेदज्ञान होता है।

❀ राग के समय भी ज्ञानी की परिणति ज्ञानरूप वर्तती है; वह ज्ञानस्वभावमय ऐसा अपने को अनुभवता है, इसलिये उसे अणुमात्र भी राग नहीं है। राग तो सदा अनात्मा है, उसमें ज्ञानी जीव स्व-रूप से कैसे वर्ते ?

❀ क्या ज्ञानी को राग नहीं होता ?

नहीं होता, अर्थात् ज्ञानी को ज्ञान में राग नहीं होता; राग को रागरूप ही वह जानता है किंतु अपने ज्ञान में वह राग का मिश्रण नहीं करता। राग तो उसके ज्ञान का ज्ञेय है किंतु वह ज्ञान का कार्य नहीं है, ज्ञानी का ज्ञान राग से भिन्न है। अतः ज्ञानी को राग नहीं है। अज्ञानी राग के समय राग से भिन्न ज्ञान को जानता नहीं, राग को ही निजस्वभावरूप अनुभव करता है, अर्थात् राग से भिन्न कोई आत्मा उसे दिखता ही नहीं। इसप्रकार अज्ञानी ही राग में स्व-रूप से वर्तता है; अतः उसे आत्मा-अनात्मा का भेदज्ञान नहीं है।

❀ शास्त्रज्ञान का फल तो ज्ञान और राग का भेदज्ञान करके ज्ञान का सेवन करना और राग का सेवन छोड़ना वह है। अकेले शास्त्रों को रट लें—शब्दों की धारणा करे किंतु अंदर में ऐसा भेदज्ञान न करे, ज्ञान का अनुभव न करे, तो उसे धर्म नहीं होता; शास्त्र पढ़ने का सच्चा फल उसे नहीं आता। गाथा ३८२ में कहा है कि—

यह जानकर भी मूढ़ जिय पावे नहीं उपशम अरे।
शिवबुद्धि को नहीं पायके, वह पर ग्रहण करना चहे॥

ज्ञान का परद्रव्यों से अत्यंत भिन्नत्व बतलाया है, उसे जानकर भी मूढ़ जीव सत्यार्थ उपशम को प्राप्त नहीं करता; भेदज्ञानरूप शिवबुद्धि का ग्रहण न करता हुआ वह जीव परद्रव्य को ग्रहण करना चाहता है। ज्ञान में राग को ग्रहण करना चाहता है—उस जीव को शिवबुद्धि नहीं है—भेदज्ञान नहीं है, मोक्षमार्ग नहीं है।

❀ अरे, मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा कैसा हूँ—उसका जिसे अनुभव नहीं है, रागरहित स्वरूप कैसा है, उनकी जिसे खबर नहीं है, राग अनात्मा होने पर उसे आत्मभाव के रूप में जो अनुभव करता है, वह अज्ञानी है, ज्ञानस्वरूप आत्मा की सत्ता है—उसका उसे निर्णय नहीं है।

❀ राग का अस्तित्व रागरूप ही है, किंतु ज्ञान में राग का अस्तित्व नहीं है।—इसप्रकार धर्मी

जीव अपने को राग से अत्यंत अभावरूप ऐसी चैतन्यसत्तारूप से अनुभव करता है; राग को चैतन्य से भिन्न सत्तारूप से जानता है।—ऐसा भेदज्ञान जिसे न हो, वह जीव सम्यग्दृष्टि नहीं है।

❀ स्व-रूप से सत्ता और पर-रूप से असत्ता—ऐसा प्रत्येक वस्तु का स्वरूप है। पररूप को यदि स्वरूप में मिल जो तो उस जीव ने वस्तु के स्वरूप को नहीं जाना।

❀ आत्मा स्वरूप से सत्ता है।'स्वरूप से सत्ता अर्थात् क्या ?

ज्ञान-आनंदरूप जो निजस्वभाव, वह स्वरूप है; उन ज्ञानादि भावों के साथ आत्मा को नित्य तन्मयता है, उन्हें आत्मस्वरूप से अनुभव करता है; अर्थात् ज्ञानादि स्वरूप से आत्मा को सत्यना है।

❀ और आत्मा को पररूप से असत्ता है। पररूप अर्थात् क्या ? ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा से भिन्न जो कुछ शरीरादिक या रागादिक भाव हैं, वे सभी अनात्मा हैं, वे पररूप हैं, उनसे आत्मा की सत्ता भिन्न है। यदि उन देहादि-रागादि से पृथक्त्व न माने किंतु उन्हें आत्मा में मिला ले तो उस जीव ने 'पररूप से असत्' ऐसे आत्मा को जाना ही नहीं, अर्थात् पर से भिन्न स्वरूप से आत्मा की सत्ता कैसी हे, वह उसने जानी नहीं, अतः वह मिथ्यादृष्टि हैं; उसे आत्मा-अनात्मा का भेदज्ञान नहीं।

❀ आत्मा-अनात्मा का यथार्थ भेदज्ञान करके जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उसने अपने आत्मा में मोक्ष का मंडप रोपा है।

❀ अहा, पंचमकाल में मोक्षमार्ग में प्रवीण ऐसे दिगम्बर संतों ने यह मोक्षमार्ग दिखाया है। राग की एक कणिका भी आत्मा के ज्ञानभाव में नहीं है; ज्ञानमयभाव, राग से सर्वथा भिन्न है।

❀ आत्मा के स्वभाव का अनुभव करने पर उसमें ज्ञान की अस्ति और राग की नास्ति—ऐसा अस्ति-नास्ति का ज्ञान एक साथ ही है। ऐसा नहीं है कि 'ज्ञान की अस्ति' तो जान ली और उस समय 'ज्ञान में राग की नास्ति' जानना शेष रह गया। जिसने स्वसन्मुखता सहित राग की नास्ति नहीं जानी, उसने ज्ञान की अस्ति को भी नहीं जाना।

❀ ज्ञान कहो या आत्मा कहो; राग कहो या अनात्मा कहो; इसप्रकार आत्मा और अनात्मा की भिन्नता को जो नहीं जानता, उसे जीव-अजीव का भेदज्ञान भी नहीं है। जिसे जीव-अजीव

की भिन्नता का भान नहीं है, वह सम्यग्दृष्टि कैसा ? वह तो अपने को रागरूप ही अनुभव करनेवाला मिथ्यादृष्टि ही है।

❀ ज्ञान और राग एकमेक नहीं हैं अर्थात् निश्चय और व्यवहार का मिश्रण नहीं है। राग को रागरूप से जानने पर जो भी रागभाव (अरे, अंतिम में अंतिम गुण-गुणी भेद के विचाररूप राग) है, उस सबको छोड़कर उसके अभावरूप शुद्धज्ञानसत्ता है; किंतु यदि राग के किसी भी अंश को रागरूप न मानकर उस रागांश को ज्ञान के साथ मिला ले, या उस रागांश को ज्ञान का सच्चा साधन मान ले; अर्थात् उस राग में शांति-माने तो उस जीव ने रागरहित ऐसे शुद्धज्ञान को जाना ही नहीं। उसे न तो राग का वास्तविक ज्ञान है और न तो अपने ज्ञानस्वभाव का सच्चा ज्ञान है; इसप्रकार जीव-अजीव के ज्ञानरहित ऐसा वह मिथ्यादृष्टि है।

❀ अरे जीव! तेरा सच्चा सौभाग्य तो उसमें है कि राग और ज्ञान की अत्यंत भिन्नता जानकर, आनंदरूप भेदज्ञान प्रगट कर। शुद्धज्ञान में से राग की गंध भी निकाल दे। २१ प्रकार के औदयिकभावों का कोई अंश ज्ञान में नहीं है। ऐसे ज्ञान का सम्यग्दृष्टि अनुभव करते हैं। ऐसा शुद्धज्ञान वह निजपद है, और अन्य सभी अपद-परपद हैं।

भेदविज्ञान को अभिनंदन

अंतर्मुख हुए उपयोग में आत्मा है। निर्मल पर्याय के आधार से आत्मा कहा है, अर्थात् अभेदरूप निर्मल पर्याय को आत्मा ही कहा। संवर-निर्जरारूप निर्मल पर्याय में आत्मा अभेद है, इसलिये उसके आधार से ही आत्मा कहा। द्रव्य और पर्याय अभिन्न हैं। निर्मलपर्यायरूप उपयोग है, वह क्रोध से-आस्रव से भिन्न है और आत्मस्वभाव से अभिन्न है। क्रोध में आत्मा नहीं है; उपयोग-पर्याय में आत्मा है और आत्मा में उपयोग है। उपयोग अंतर्मुख होकर आत्मा को अभेदरूप से अनुभव करता है, उसमें आत्मा की प्रसिद्धि है, किंतु उसमें क्रोधादि की उत्पत्ति नहीं है। इसप्रकार उपयोग और क्रोधादि को अत्यंत भिन्नत्व है, ऐसा उत्तम भेदज्ञान सिद्ध हुआ। ऐसा भेदज्ञान वह संवर है, और वह मोक्ष का उपाय है। अत: आचार्यदेव ने संवर अधिकार के प्रारंभ में उस भेदविज्ञान की प्रशंसा करके उसका अभिनंदन किया है।

अरिहंत को जानने से आत्मा का ज्ञान होता है

[समयसार का साथी ऐसा जो प्रवचनसार उसकी ८०-८१-८२वीं गाथाओं में कुन्दकुन्दस्वामी ने मोह-क्षय का जो अमोघ उपाय बताया है... वह गुरुदेव के हृदय में जम गया है। गुरुदेव जब प्रवचन में उस उपाय का धारावाही उपदेश देते हैं, तब श्रोताओं के अंतर में ऐसा अनुभव होता है, मानो मोह टूटा या अभी-अभी टूट जायेगा।

जो जानता अरहंत को, गुण-द्रव्य अरु पर्याय से,
वह जीव जाने आत्म को, तसु मोह नष्ट अवश्य हो॥८०॥

जो यथार्थतया द्रव्य-गुण-पर्यायरूप से अरिहन्त को जानते हैं, वे निश्चय से अपने आत्मा को जानते ही हैं, एवं उनका मोह क्षय को प्राप्त होता है—ऐसा कहकर आचार्यदेव ने मोह-क्षय का अचल मार्ग बताया है।

किसी को शंका हो कि अभी तो अरिहंत हैं नहीं, तो फिर अरिहंत को जानने की बात क्यों की? तो उसका समाधान करते हैं कि भाई! यहाँ अरिहंत के क्षेत्र की बात नहीं है, परंतु अरिहंत के स्वरूप को जानने की बात है। अरिहंत की यहाँ साक्षात् उपस्थिति हो तो ही उनका स्वरूप जाना जाये, और दूर हों तो न जाना जाये—ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है। कोई क्षेत्र में अभी भी अरिहंत नहीं हैं, तो भी उनका अस्तित्व अन्यत्र महाविदेहादि क्षेत्र में तो अभी भी है। अरिहंत प्रभु, जब साक्षात् सामने विराजते हों, तो भी उनका स्वरूप ज्ञान द्वारा ही पहिचाना जाता है। वहाँ अरिहंत तो आत्मा ही है, उनके द्रव्य-गुण या पर्याय आँख से तो दिखायी नहीं देते, तो भी ज्ञान द्वारा उनके स्वरूप का निर्णय हो सकता है, तो फिर वे क्षेत्र से जरा दूर हों, उस समय भी ज्ञान द्वारा उनका निर्णय अवश्य हो सकता है। साक्षात् विराजमान हों, तब भी आँख से (इन्द्रियज्ञान से) तो अरिहंत का शरीर ही दिखायी देता है। क्या शरीर, वह अरिहंत का द्रव्य-गुण-पर्याय है? अथवा क्या दिव्यवाणी, वह अरिहंत का द्रव्य-गुण-पर्याय है?—नहीं, ये सब तो आत्मा से भिन्न हैं। चैतन्यस्वरूप आत्मद्रव्य, उसके ज्ञान-दर्शनादि गुण और उसका केवलज्ञानादि पर्यायें, वे अरिहंत हैं। उन द्रव्य-गुण-पर्याय को यथार्थरूप से पहिचाने तो अरिहंत का स्वरूप जाना कहलाये। साक्षात् अरिहंत प्रभु के सामने बैठकर स्तवन करे, परंतु उनके द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप न समझे तो उसने अरिहंत की परमार्थ-स्तुति नहीं की है।

क्षेत्र से समीप अरिहंत की उपस्थिति हो या न भी हो, उसके साथ संबंध नहीं है। परंतु अपने ज्ञान में उनके स्वरूप का निर्णय है या नहीं, उसके साथ संबंध है। क्षेत्र के नजदीक अरिहंत प्रभु विराजते हों, परंतु उस समय यदि ज्ञान द्वारा स्वयं उनके स्वरूप का निर्णय न करे, तो जीव को आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता, और उसे तो अरिहंत अति दूर हैं। एवं अभी क्षेत्र से नजदीक अरिहंत प्रभु न होने पर भी यदि अपने ज्ञान द्वारा अभी भी अरिहंत प्रभु के स्वरूप का निर्णय करे तो आत्मा की पहिचान हो सकती है, और उसे अरिहंत प्रभु साक्षात् नजदीक उपस्थित हैं। उसके अंतर में ही अरिहंतदेव विराजते हैं। क्षेत्र-अपेक्षा की बात नहीं है, परंतु भाव-अपेक्षा की बात है। सच्ची समझ का संबंध तो भावों के साथ है।

अरिहंत कब हैं और कब नहीं—यह कहा गया है। महाविदेहक्षेत्र में अथवा भरतक्षेत्र के चौथे काल में साक्षात् अरिहंत के समय भी जिन आत्माओं ने द्रव्य-गुण-पर्याय रूप से अरिहंत के स्वरूप का सच्चा निर्णय अपने ज्ञान में न किया, तो उन जीवों के ज्ञान में तो उस समय भी अरिहंत की उपस्थिति नहीं है। और भरतक्षेत्र के पंचमकाल में साक्षात् अरिहंत की अनुपस्थिति में भी जिन आत्माओं ने द्रव्य-गुण-पर्यायरूप से अरिहंत के स्वरूप का सच्चा निर्णय अपने ज्ञान में किया, उनके ज्ञान में तो अरिहंत प्रभु साक्षात् विराजते हैं।

समवसरण में भी जिन जीवों ने अरिहंत के स्वरूप का निर्णय करके आत्मस्वरूप को समझा है, उन जीवों को अरिहंत प्रभु मोहक्षय के निमित्त कहलाये, परंतु जिन्होंने निर्णय नहीं किया, उनके लिये तो साक्षात् अरिहंत प्रभु भी धर्म में निमित्त नहीं कहलाये। अभी भी जो अरिहंत के स्वरूप का निर्णय करके आत्मस्वरूप समझे, उसके ज्ञान में अरिहंत प्रभु निमित्त कहे जाते हैं।

जिसकी दृष्टि निमित्त पर है, वह क्षेत्र को देखता है, कि अभी इस क्षेत्र में अरिहंत नहीं हैं; भाई! अरिहंत भले न हों परंतु अरिहंत का निर्णय करनेवाला तेरा ज्ञान तो है न? उस ज्ञान को असीम स्वभाव में फैला तो भावभेद टूट जायेगा, एवम् क्षेत्रभेद भी नहीं रहेगा। जिसकी दृष्टि उपादान पर है, वह अपने ज्ञान के बल से अरिहंत का निर्णय करके क्षेत्रभेद निकाल डालता है। अरिहंत तो निमित्त हैं, अंतर्मुख होकर, अरिहंत का निर्णय करनेवाले उस ज्ञान की महिमा है। मूल सूत्र में 'जो जाणदि' ऐसा कहा है अर्थात् जाननेवाला ज्ञान, वह मोहक्षय का कारण है, परंतु अरिहंत तो भिन्न हैं, वे इस आत्मा का मोह क्षय नहीं करते।

समवसरण में स्थित जीव अरिहंत से तो दूर क्षेत्र में बैठता है—क्षेत्र से तो अरिहंत वहाँ भी दूर हैं, और यहाँ क्षेत्र से कुछ ज्यादा दूरी है; परंतु यह तो क्षेत्र से फर्क पड़ा—इससे क्या? जिन्होंने अपने भाव में अरिहंत को सन्मुख किया है, उनको सदा सन्मुख ही विराजते हैं। और जिन्होंने भावों में अरिहंत को दूर किया है, उन्हीं को अति दूर हैं। क्षेत्र से समीप हों या न हों, उससे क्या? निकटता भावों के साथ मिलान कर करना है। अहो! अरिहंत का विरह भुला दिया; कौन कहता है कि अभी अरिहंत प्रभु नहीं हैं?

यह पंचम काल के मुनि का कथन है; पंचमकाल में यह हो सकता है कि जो कोई जीव अपने ज्ञान द्वारा अरिहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, उसका दर्शनमोह अवश्य नाश होता है।

—००—००—

निज आतम में रम जाओ

शीतल जल शुचिता से भरकर आस्रव मल को हटाओ,
पुजारी और कहीं मत जाओ।
निज आतम में रम जाओ, पुजारी और कहीं मत जाओ...
अभिन्न षट्कारक चंदन ले भव की तपन मिटाओ... पुजारी०
उत्तम अक्षत लेकर निज के भाव अखंड बनाओ... पुजारी०
परम भाव के पुष्प चढ़ाकर काम की फाँसी मिटाओ... पुजारी०
तृष्णा के दुःख मेटन काजे, स्वानुभव सुख लाओ.. पुजारी०
मोह भजन की मूर्छा तज के ज्ञानज्योति प्रगटाओ... पुजारी०
क्रोधादिक धूप स्वाहा करके रत्नत्रयी तप लाओ,
ध्यानाग्नी प्रभुमयी अग्नि से तुम कुंदन बन जाओ... पुजारी०
सांसारिक झूठे फल तज कर, मोक्ष सरस फल पाओ,
पुजारी और कहीं मत जाओ... निज आतम में रम जाओ।

शास्त्राभ्यास का फल

प्रश्न—शास्त्राभ्यास का फल क्या ?

उत्तर—आत्मा में वीतरागता हो, वही शास्त्राभ्यास का फल है।

प्रश्न—ऐसे भी कई लोग होते हैं जो शास्त्र का अभ्यास तो करते हैं, तथापि राग से आत्मा को लाभ होना मानते हैं; तब शास्त्राभ्यास का फल वीतरागता कहाँ रहा ?

उत्तर—जो राग से लाभ होना मानते हैं, उन्होंने वास्तव में शास्त्र पढ़े ही नहीं; 'पढ़े परंतु गुने नहीं;' शास्त्रों में कहीं भी राग से लाभ होना लिखा ही नहीं है।

प्रश्न—ज्ञानी को शास्त्रों का सम्यग्ज्ञान होने पर भी उन्हें राग तो होता ही है ?

उत्तर—ज्ञानी को चैतन्यस्वभाव के आश्रय से जितनी वीतरागता प्रगट होती है, उतना ही शास्त्र-अभ्यास का फल है, तथापि जो राग रह गया है, वह कहीं शास्त्र-अभ्यास का फल नहीं है। राग होने पर भी ज्ञानी उसे निजस्वभावरूप से नहीं मानते, इसलिये उनके राग का पोषण नहीं है, परंतु वीतरागता का ही पोषण है।—ऐसा होने से, राग होने पर भी ज्ञानी को शास्त्राभ्यास का दोष नहीं। यथार्थ ज्ञान का फल शुद्धात्मा का अनुभव और वीतरागी आनंद वह तो ज्ञानी को प्राप्त हुआ ही है।

प्रश्न—शास्त्रभ्यास का फल वीतरागता किसप्रकार है ?

उत्तर—शास्त्र स्व-पर का भेदज्ञान कराते हैं और उस भेदज्ञान का फल ही वीतरागता है। इसप्रकार शास्त्राभ्यास का फल वीतरागता है। सच्चे ज्ञान के साथ रागरहित आत्मिक सुख भी प्रगट होता है।

आत्मा का स्वभाव क्या और परभाव क्या, उसे यथार्थ पहिचाननेवाले जीव की परिणति निश्चित ही परभाव से विमुख होकर शुद्धस्वभाव की ओर उन्मुख होती है। शुद्धस्वभाव की उन्मुखता से ही वीतरागता होती है। इसप्रकार भेदज्ञान द्वारा अवश्य ही वीतरागता एवं अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होता है।

[जब तक ऐसा फल प्रगट न हो, तब तक समझना कि शास्त्राभ्यास में कहीं पर भूल है।]

सुख के लिये विचार

अरे भैया ! तुझे सुखी होना है ना ! तो सुख के स्वरूप के विषय में कभी तूने सोचा है ? तू इतना तो विचार करके देख, कि तूने जिन-जिन पर विषयों में सुख माना है, उन-उन विषयों में आगे बढ़ते-बढ़ते अंत में क्या परिणाम आता है ? खान-पीन आदि किसी भी विषय में आखिर तो अरुचि ही होती है, और उपयोग उसको छोड़कर अन्य विषयों की ओर जाता है। इस तरह यदि विषयों को भोगने में आखिर अरुचि ही होती है तो तू समझ ले कि उनमें यथार्थतया तेरा सुख था ही नहीं, परंतु तूने मात्र कल्पना से ही सुख माना था। यदि उसमें वास्तविक सुख हो तो, उसको भोगते-भोगते कभी किसी को अरुचि नहीं होना चाहिये। देखो, सिद्ध भगवंतों को आत्मा का सच्चा सुख है, वह सुख भोगते-भोगते अनन्त काल में भी अरुचि नहीं आती... आत्मिक सुख से वे तृप्त-तृप्त हैं।

हे आत्मार्थी ! आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी भी बाह्य विषय में सुख नहीं है। यदि तू जरा सोच के देख तो तुझे प्रत्यक्ष अनुभवगम्य हो—ऐसी बात है। जैसे—तूने लड्डू खाने में सुख माना;—एक लड्डू खाया—दूसरा खाया, तीसरा... चौथा खाया... अंत में ऐसा लगता है कि अब बस; लड्डू खाने में सुख नहीं है। तो समझ ले कि अंत में जिसमें सुख का अभाव भासित हुआ, उसमें पहले से ही सुख का अभाव है। इस तरह लड्डू के स्थान में अन्य कोई भी परविषय लेकर विचार करने पर यह निश्चय होगा कि उन विषयों में सुख नहीं है, परंतु सुख तो आत्मस्वभाव में ही है। उस स्वभावसुख का निर्णय करके, उसको स्वीकार कर, और विषयों में सुख की बुद्धि छोड़।

जिसमें वास्तव में सुख हो, उसमें चाहे जितना आगे जाने पर भी कभी भी अरुचि नहीं आयेगी; स्वभाव में सुख है तो उसमें ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं, त्यों-त्यों सुख बढ़ता है... उसमें अरुचि नहीं आती, और विषय-सुख में अरुचि (घृणा) आये बिना नहीं रहती।

परविषय दो प्रकार के हैं—शुभ, अशुभ; पाप के भाव में तो अरुचि होती है तथा मंदिर, भक्ति, दया इत्यादि शुभ के भाव में भी बढ़ते-बढ़ते अंत में थक जाता है, वहाँ से हटने का मन होता है। यदि उस शुभ में सुख हो तो वहाँ से हटने का मन क्यों हो ? अज्ञानी जीव शुभ से हटकर शुद्ध में नहीं जाता किंतु शुभ से हटकर वापिस अशुभ में जाता है अर्थात् परविषयों में ही

रहकर उपयोग शुभ और अशुभ में ही भटकता रहता है। 'अब तक पराश्रयदृष्टि द्वारा परलक्षी ही रहा, किंतु कहीं से भी सुख का अनुभव नहीं हुआ। अतः परोन्मुख भाव में सुख नहीं परंतु स्वलक्षी अंतर्मुख अवलोकन में ही सुख है। अतीन्द्रिय ज्ञान में ही सुख है।'—ऐसा निर्णय करके यदि स्व की ओर लक्ष करे तो सिद्ध भगवान जैसा आत्मा के सुख का अनुभव प्रगट हो; एवं विषयों में से रुचि हट जाये—इस दशा का नाम ही धर्म है।

अरे भैया! लंबे अरसे के बाद भी, अंत में तुझे विषयों में (शुभ या अशुभ) अरुचि होने पर उनमें सुख का इंकार करना पड़ता है, तो फिर वर्तमान में ही स्वभाव के सुख की स्वीकृति लाकर, विषयों में सुख का नकार ला! विषयों के लक्ष से, विषयों के सुख का नकार लाता है, अतः वह 'नकार' टिकता नहीं है; और फिर वापस तू दूसरे इन्द्रिय-विषयों में लीन हो जाता है! यदि स्वभाव के अतीन्द्रिय सुख की रुचि द्वारा स्वीकृति लाकर, उन विषय-सुखों का नकार लाये तो वह 'हकार' और 'नकार' दोनों यथार्थ टिकेंगे। और आगे बढ़ते-बढ़ते अतीन्द्रिय केवल सुख प्रगटेगा। इस तरह आत्मार्थी को सर्व प्रथम ही स्वलक्ष्य से इन्द्रियविषयों के ओर से आदरबुद्धि छूट जानी चाहिए और अतीन्द्रिय सुख की परम आदरपूर्वक श्रद्धा होनी चाहिए, यही अतीन्द्रिय सुख प्रगट करने का उपाय है।

आत्मा को पहिचानना हो तो...

अरे, आत्मा का स्वभाव तो देखो! संपूर्ण आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। तुझे अपने आत्मा को या भगवान को पहिचानना हो तो ऐसे स्वरूप से पहिचानना चाहिये। उसमें कहीं हस्तक्षेप करने का प्रयत्न करेगा तो आत्मा का सच्चा स्वरूप समझ में नहीं आयेगा। पहले जब तीर्थंकर भगवान साधकदशा में मुनिरूप में थे, तब वे मौन धारण कर वन में निवास करते थे और अब क्षायिकज्ञान-केवलज्ञान प्रगट हुआ, तब समवसरण में दिव्यपुण्य के वैभव को भोगते हैं और दिव्यध्वनि छूटती है;—इसप्रकार जो पर के कर्ता-भोक्तारूप में भगवान को देखते हैं, उन्होंने भगवान को पहिचाना ही नहीं। तुझे अपने आत्मा को पहिचानना हो तो उसे ज्ञानस्वरूप ही जान।

धर्म-प्रभावना के समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)—पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रवचन में सबेरे श्री समयसारजी के निर्जरा अधिकार पर तथा दोपहर को श्री पंचास्तिकाय पर प्रवचन हो रहे हैं। दोपहर को प्रवचन के पश्चात् सामूहिक भक्ति एवं रात्रि को तत्त्वचर्चा आदि कार्यक्रम भी नियमितरूप से चलते हैं। श्री परमागम मंदिर के निर्माण की पूर्व तैयारी भी जोरों से चल रही है।

जलगाँव (महाराष्ट्र) में

दिगम्बर जैन मंदिर का शिलान्यास

जलगाँव में बहुत समय से एक दिगम्बर जैन मंदिर की आवश्यकता थी। श्री आनंदीलालजी, श्री ब्रजलालजी आदि मुमुक्षु भाईयों की हार्दिक भावना थी कि जलगाँव में दिगम्बर जैन मंदिर का निर्माण हो। श्री आनंदलालजी की माताजी श्री मंगलाबहिन की विशेष प्रेरणा थी। तदनुसार सबके सहयोग से तारीख १-११-६९ के शुभ दिन बम्बई निवासी श्री सेठ नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी के शुभहस्त से शिलान्यास समारोह संपन्न हो गया। इस अवसर पर बम्बई, अकोला, धूलिया, पारोला, मालेगाँव, सिरपुर, खंडवा आदि अनेक नगरों के साधर्मी मुमुक्षु पधारे थे। जलगाँव एक अच्छी व्यापारद मंडी और अच्छा नगर है। यहाँ श्वेताम्बर जैन बंधुओं की अच्छी संख्या है। परस्पर प्रेम, वात्सल्य और सहयोग की भावना है। जिन मंदिर के लिये करीब साठ हजार रुपये एकत्र हो गये। श्री ब्रह्मचारी दीपचंदजी—जो महाराष्ट्र में प्रचार-कार्य करते हैं—इस समारोह में सम्मिलित हुए थे।

उदयपुर (राजस्थान) में

जैनधर्म शिक्षण-शिविर एवं बृहत् सिद्धचक्र विधान

अष्टाह्निका-महोत्सव में श्री अम्बालाल भंवरलाल गंगावत ने सिद्धचक्र विधान करवाया था। उसी अवसर पर दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल की ओर से १३ दिन के लिये जैनधर्म शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें प्रसिद्ध विद्वान श्री पंडित खीमचंद जेठालाल सेठ सोनगढ़, श्री नेमीचंदजी रखियालवाले और श्री चिमनभाई सोनगढ़ से पधारे थे। श्री पंडित

खीमचंदभाई द्वारा प्रतिदिन शास्त्र-प्रवचन एवं शंका-समाधान होता था। श्री नेमीचंदजी तथा श्री चिमनभाई शिक्षार्थियों को छहढाला, द्रव्य-संग्रह एवं जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला आदि द्वारा धार्मिक शिक्षा देते थे। करीब ५०० विद्यार्थियों ने रुचिपूर्वक भाग लिया। स्थानीय समाज के अलावा बाहर से भी लोग अच्छी संख्या में आये थे। इन दिनों उदयपुर की वीतराग विज्ञान पाठशाला को १०००) की, दिगम्बर जैन चैत्यालय को १०००) की, दिगम्बर जैन विद्यालय को १०००) की तथा कुण्डलपुर (दमोह) क्षेत्र को भी १२००) की सहायता प्राप्त हुई। हम दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर प्रचार कमेटी-सोनगढ़ के तथा परम पूज्य स्वामीजी के अत्यंत आभारी हैं। सभी विद्वानों का भी हम हृदय से आभार मानते हैं। प्रत्येक कार्यक्रम अत्यंत उत्साह एवं उल्लासपूर्वक संपन्न होता था। शिक्षण शिविर में राजस्थान के अलावा गुजरात और मध्यप्रदेश के शिक्षार्थियों ने भी भाग लिया। *— उग्रसेन बंडी*

श्री मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र) प्रकाशन संबंधी

विज्ञप्ति

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट ने श्री मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र) की तृतीय आवृत्ति प्रकाशित करने का विचार किया है परंतु पर्याप्त संख्या में आर्डर आ जाने पर ही ग्रंथ छपाया जायेगा।

प्रत्येक नगर के मुमुक्षु मंडलों के अध्यक्ष महानुभावों से निवेदन है कि आपके मंडल को जितनी प्रतियों की आवश्यकता हो, वह हमें तुरंत सूचित करें। कोई अग्रिम राशि भिजवाने की आवश्यकता नहीं है, परंतु इस बात की गारंटी दें कि आपका मंडल आपके द्वारा सूचित प्रतियाँ अवश्य खरीद लेगा।

प्रेषक—
साहित्य प्रकाशन समिति
दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विज्ञप्ति

पूज्य श्री कानजीस्वामी की ८०वीं जन्म-जयंती के उपलक्ष में सोनगढ़ में जो भव्य एवं आदर्श परमागम मंदिर निर्माण कराने का निर्णय किया गया है, उसमें अनेक मुमुक्षुओं की ओर से गाथाएँ उत्कीर्ण कराने के लिये अमुक रकमें लिखवायी जा रही हैं। कुछ भाई-बहिनों ने ऐसी सलाह दी है कि एक-एक गाथा उत्कीर्ण कराने के लिये अमुक रकम तय कर दी जाये तो दान देनेवालों को इस बात का संतोष होगा कि हमने भी इस पवित्र कार्य में अमुक गाथाएँ उत्कीर्ण करवाकर अपना यत्किंचित योगदान दिया है। इस सलाह को ध्यान में लेकर गाथा और उसकी टीका के लिये ५०१) पाँच सौ एक रुपये की रकम निश्चित की गई है।

अभी तक जो रकमें आयी हैं, उनका हिसाब भी एक गाथा-टीका के ५०१) पाँच सौ एक रुपये गिना जायेगा।

जिन मुमुक्षुओं को अपनी ओर से एक पूर्ण गाथा-टीका उत्कीर्ण कराने की भावना हो और जिन्होंने ५०१) पाँच सौ एक रुपये से कम रकम परमागममंदिर हेतु लिखवायी हो, वे बाकी रकम देकर अपनी भावना पूर्ण कर सकते हैं।

लि.—

श्री परमागम मंदिर कमेटी

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल-बम्बई

विज्ञप्ति

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट की ओर से श्राविकाशाला के कम्पाउंड में १६×१० साइज के कमरे बनवाने का निर्णय किया गया है। जो महानुभाव अपने नाम के कमरे बनवाना चाहते हों, वे निम्नोक्त नियमों एवं शर्तों पर बनवा सकते हैं:—

(१) प्रत्येक कमरे के लिये २००१) रुपये ट्रस्ट को देना होंगे।

(२) कमरे की मालिकी ट्रस्ट की रहेगी।

(३) कमरा बनवानेवाले या उनके स्वजनों को आना हो तो १५ दिन पूर्व सूचना मिलने पर कमरा खाली करवा दिया जायेगा।

(४) कमरा बनवानेवाले जब सोनगढ़ से बाहर जायें, तब कमरा ट्रस्ट को सौंपकर जाना होगा। उन्हें अपना सामान रखने के लिये कमरे में ऊपर मचान बनवाकर व्यवस्था कर दी जायेगी।

लि०-

दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नये प्रकाशन

लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका (७वीं आवृत्ति)

क्रमशः ३० हजार पुस्तकें छप चुकी हैं, यह धर्म जागृति का नाम है। शास्त्राधार सहित संक्षेप में प्रयोजनभूत तत्त्वों की जानकारी के लिये आत्म हितेच्छुक को उत्तम मार्गदर्शिका है। सभी जिज्ञासुओं में निःसंकोच वितरण करने योग्य है। (अंग्रेजी में अनुवाद हो गया है।) पृष्ठ १०६ मूल्य २५ पैसा, पोस्टेज अलग।

छहढाला (सचित्र)

यह पुस्तक जैन समाज में पाठय-पुस्तक होने से सर्वत्र छपती ही है। सोनगढ़ में इस पुस्तक की छह आवृत्तियाँ सादा और चार आवृत्तियाँ सचित्र प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रथम आवृत्ति ११५०० छपी थी, जो जिज्ञासुओं में पढ़ने की रुचि का माप है, इसमें आत्महित का स्वरूप गागर में सागर की भाँति भरा हुआ; पूर्वाचार्यों के सर्व उपदेश का सार है, जैन तत्त्वज्ञान सुगम शैली में भरा है। बारंबार स्वाध्याय योग्य है। सर्वज्ञवीतराग जो परम हितोपदेशक हैं, उन्होंने संक्षेप में क्या कहा है ? उसे समझना हो तो छहढाला अवश्य पढ़ें। (पृष्ठ २०८, मूल्य १-०)

द्रव्य-संग्रह (सुबोधिनी टीका, दूसरी आवृत्ति)

पृष्ठ २०८, मूल्य, ०-८५, श्री नेमिचंद सिद्धांतिदेव विरचित यह ग्रंथ प्रायः प्रत्येक जैन पाठशाला में पाठ्य-पुस्तक हैं। तत्त्वज्ञान में रुचि रखनेवालों के लिये यह अति उपयोगी ग्रंथ है। हमारे आदरणीय भूतपूर्व प्रमुख श्री रामजीभाई ने बड़े परिश्रम से शास्त्राभ्यास निचोड़रूप नय विभाग सहित तैयार किया है। यथार्थ समाधान के लिये प्रौढ़ रचना है।

जैन बालपोथी में ११३ प्रश्नोत्तर बढ़ाये गये हैं। यह छपकर तैयार है। मूल्य ०-२५

हिन्दी (मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार नाटक प्रेस में)

सन् १९७१ की जनगणना के समय धर्म के
खाना नं० १० में 'जैन' लिखाकर सही आँकड़े
इकट्ठा करने में सरकार की मदद करें॥

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	" " " भाग-२	१.००
	" " " भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२०	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२१	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२४	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
	पाँच पुस्तकों का कुल मूल्य	२.६०
२६	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२७	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२८	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)